साधना

राय कृष्णदास

साहित्य-सदन

चिरगाँव (झाँसी)

प्रथमावृत्ति)　　१९७५　　(मूल्य १)

इन्डियन प्रेस, प्रयाग, में अपूर्वकृष्ण बोस
द्वारा मुद्रित

परिचय

हमारा मानस शीघ्र ही क्षीरसागर की समता किया चाहता है। तुम्हारी करुणा-वृष्टि से वह प्रति दिन अपनी सीमा का विस्तार कर रहा है। हमारी एकान्त कामना है कि वह असीम हो जाय और पृथ्वी के पार्श्व में लहराता हुआ उसे अपनी मर्य्यादा का विश्वास दिलाता रहे। संसार के उपवन को वह सरस बनाये रहे, किन्तु उससे निराला रहे। ऐसा न होने से प्रलय की सम्भावना जो है!

जो हो, उसे भी आशा है कि तुम उसे अपनाने के लिए आ रहे हो। इसी से वह तरङ्गों के रूप में अपने बाहु तुम्हारे स्वागत के लिए बढ़ा रहा है। कम्बु-राशि के रूप में अपनी ग्रीवा उठा रहा है। शुक्तियों के रूप में उसने श्रवण खोल रक्खे हैं। उनमें मोतियों के आभूषण शोभित हो रहे हैं। और, कमलों के रूप में उसने अपने सहस्र सहस्र नेत्र तुम्हारी शोभा देखने के लिए उन्मीलित कर रक्खे हैं। हे परमपुरुष, तुम अपनी परा प्रकृति के साथ आकर उसकी आशा और अभिलाषा पूरी करो। उसे अपना निवास-स्थान बनाओ और ऐसा करो कि भावी सन्ताने उसे मथ कर सदैव अमृतपान करती रहें।

अहा! वह देखो, उसके हृदय से प्रेमाग्नि का धूम उठ रहा है और एक छोटे से मेघ का आकार धारण करके अपने अस्फुट किन्तु स्निग्ध निनाद से तुम्हारी अव्यक्तता को व्यक्त करना चाहता है। यह मयूर उस आराव को सुन कर आनन्द से उन्मत्त हो नाच उठा है। क्या उस कृष्ण पयोद

की गम्भीर ध्वनि तुम्हारे चरणों तक पहुँच न सकेगी ? जो रस उसमे ओत प्रोत भरा है वह तो केवल उसी के हार्दिक भावो से सम्बद्ध है। इसी प्रकार उससे दीप्ति की जो उज्ज्वल रेखा प्रकट होती है वह भी उसी की साधना की स्फूर्ति है। क्या उस ज्योति से तुम्हारे अनन्त पथ पर कुछ प्रकाश पड सकता है ?

इस बात को तुम्हीं जान सकते हो। वह कृष्ण पयोद न यह कहने का साहस करता है, न करना चाहता है, न कर सकता है। और न उसे इस बात का अभिमान है कि उसकी वृष्टि से हमारे मानस की सीमा का विस्तार होगा, अथवा वह उत्ताप का उपशम करके हरियाली को उत्पन्न करेगा। यह तो तुम्हारी करुणा-वृष्टि का ही काम है। हाँ, यदि उस पात्र के द्वारा भी तुम्हारी करुणा के दे। चार कण बरस गये तो वह भी कृतकृत्य होकर अपने को धन्य समझेगा।

तब वह चाहता क्या है ? केवल यही ही कि मयूर और कोकिलो के साथ अनुरागी चातक उसकी आकाक्षा की पूर्ति के लिए एक बार आकाश को गुँजा के—"पी कहाँ" कह कर तुमको पुकार उठे और उसकी क्षुद्र वारि-धारा तुम्हारे पाद्य के लिए गिर कर अपना जीवन सफल करे। इसी में उसकी सार्थकता है।

और ? बस।

श्रीकाशी
जन्माष्टमी, ७४

मैथिलीशरण गुप्त

सूची

प्रार्थना	१	कृपालु कर्णधार	२३
साधना	२	अस्थायित्व में स्थायित्व	२४
सेवा	४	आतुरता	२५
रहस्य	५	संसार की भूल	२६
कुटी और प्रासाद	६	कच्चे घट में अमृत	२७
भूल	७	बंधन की आवश्यकता	२८
निर्गुण वीणा	८	आत्म-रक्षा	२९
लज्जा	९	केवल तुम्हीं	३०
स्वप्न मात्र	१०	सफल-काम	३१
साहस	११	क्रय-विक्रय	३२
व्यर्थ की खोज	१२	वास्तविक मूल्य	३३
सहारा	१३	निरुद्देश परिश्रम की सफलता	३४
अनुराग विराग	१४	असंभव	३५
प्रेम की प्रबलता	१६	संस्कार	३६
मोहन	१७	महत्ता	३७
संगठन	१८	जगत् का पागल	३८
आनन्द गीत	१९	तुम्हारी माया	३९
प्रकृति और कला	२०	अभिसार	४०
प्रेम परिचय	२१	अकस्मात्	४१
आकांक्षा	२२	शङ्का	४२

ओछाई और अगाधता	४३	सुध	७०
दुरुपयोग	४४	प्रहरी	७१
अपना, पराया	४५	प्रतिफल ...	७२
आनन्द की खोज	४६	जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति .	७३
वञ्चित	४८	अभीष्ट आदेश	७४
श्लाघनीय स्वार्थ	४९	संकीर्ण पथ	७५
कर्मों के अर्थ	५०	स्वत सिद्धि .	७६
स्वयम्	५१	माला .	७८
तुम्हारा पीछा	५२	तुम स्वय आरहे हो	७९
चरण चिह्न	५३	उद्देश की सफलता	८०
मधुर मान	५४	प्रतिबिम्ब ..	८२
प्रमाद	५५	रुचि .	८३
अधूरी याचना .	५६	स्थान .	८४
तुम्हारी रुचि	५७	दूत-आगमन .	८६
संताप की शीतलता	५८	आकर्षण	८७
अभाव में आविर्भाव	५९	अशान्ति में शान्ति	८८
अनादि संगीत	६०	स्वार्थ .	८९
तुम तो मेरे पास हो	६१	विदा	९०
जागृति	६२	आँसू	९१
समय की सहायता	६३	हीरा	९२
मिलन वेला	६४	वन पाटल	९३
चुम्बन	६५	पागल पथिक	९४
त्वरा	६६	अभ्यर्थ आवेदन	९६
गान की नित्यता	६७	मृग मरीचिका	९७
अभिमान	६८	संदेह	९८

साधना

प्रार्थना

अपने पद-पद्म-पराग से मुझे अपने घट को नित्य माँजने दे और उसके मधु-मकरन्द से इसे पूर्णतया भरने दे, यही एक मात्र प्रार्थना है।

साधना

हे नयनरञ्जन नीरद, तू सन्तप्तों को शीतल करने के लिए अपने आप को वरस देता है। यह तन की साधना मैं तुझ से सीखता हूँ।

हे मानस, तू निरन्तर मोती के समान उज्ज्वल, निर्मल और रम्य तरङ्गें उठाया करता है, जिनके सुख में मग्न होकर सुवर्ण-सरोज झूमा करते हैं और निरन्तर तुझे मकरन्द-दान देते रहते हैं। तू उसे सादर ग्रहण करके फिर उन्हीं के समूल नाल पुष्ट करने में प्रयुक्त करता है। जब समस्त सर पङ्किल और राजहस विकल हो उठते हैं तब उन्हें तेरे सिवा कौन आश्रय दे सकता है? यह मानसी साधना मैं तुझ से सीखता हूँ।

हे पादप, फलो के बोझ से तू झुक जाता है और तेरी डाले टूटने लगती हैं। पर तू अपना नियम नहीं छोड़ता। क्योकि बुभुक्षितो को तृप्त करके उनकी आँखे खोलना तेरा प्रण है। बुद्धि की सफलता भी यही है। और, इसे मैं तुझ से सीखता हूँ।

चातक, तू अपनी ज्वलन्त कामनाओ को सब ओर से एकत्र करके एक स्वाति की बूँद पर लगाता है और तू अपनी 'धुन' का इतना पक्का है कि साल भर उसी की रट लगाये रहता है और उसी एक बूँद से अमृत पान के समान छक जाता है। तेरी उस पर इतनी अनुरागमयी प्रबल कामना है कि तू उसमे मिल कर अपने अहम्भाव का अभाव नहीं कर देता। वरन केवल इसी

कुटी और प्रासाद

कुटी बनाने के लिए मुझे कोई कष्ट नहीं करना पड़ता था। उसी स्थान से मिट्टी और घास-फूस लेकर मैं उसे बना डालता।

पर बरसात उसे अपने साथ बहा ले जाती। मुझे शान्ति का मञ्जुल चित्र खींचते हुए अशान्ति की भयङ्कर मूर्ति का सामना करना पड़ता।

अब मैं गहरी नींव देकर प्रासाद बना रहा हूँ इस में कला और दृढता की चरम सीमा का अतिक्रमण किया जा रहा है। इसके लिए मुझ को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं और ऐसा जान पड़ता है कि मैं अधम अशान्ति में पड़ा हूँ। पर इसी कष्ट और अशान्ति से मुझे आनन्द और शान्ति का अनन्त स्रोत मिलेगा, प्राणेश के सग इसी में तो नित्य विहार होगा।

यह प्रासाद कुछ ऐसा थोड़ा ही बनेगा कि प्रकृति उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दे।

भूल

मैं समझता था कि जिस प्रकार रंग बिरंगे खिलौने देकर माता-पिता पुत्रों को प्रसन्न करते हैं उसी प्रकार तूने भी यह विचित्र सृष्टि हम सब को दी है।

फिर तू इससे मुझे अलग क्यों करता है ? क्या खिलौने छीन कर लड़के विकल किये जाते हैं ?

या मैं भूल रहा हूँ ? इससे छुड़ा कर तू मुझे अपनी छाती से लगा कर चूमना चाहता है।

खिलौनों को स्वयं फेंक देते

निर्गुण वीणा

अनन्त काल से तुम्हारे बजाते रहने से इस वीणा के गुण ढीले पड गये हैं। सो अब यह बेसुरी बजती है और उलटा तुम्हारे बजाने की योग्यता पर सशय करती है।

प्रभो, इसके गुणों को कस दो, जिसमें यह लय से बजे और इसका झूठा सशय जाता रहे।

नहीं, नहीं, ऐसा न करना। इसके गुणों को दूर बहाओ, जिसमे उनके ढीले पडने का प्रपञ्च एव इसके मिथ्या संशय का कारण ही जाता रहे और, यह निर्गुण भाव से नीरव लय का नित्य विस्तार करे और कृतकृत्य हो।

लज्जा

जब मैं देखता हूँ कि तुम्हारे मन्दिर को मैंने ऐसा अशुचि और अस्वच्छ बना रक्खा है तब मैं लज्जित हो जाता हूँ। परन्तु जब मैं देखता हूँ कि तुम उसी में प्रेमपूर्वक आ विराजते हो तब तो मैं लज्जा से डूब जाता हूँ।

जब मैं देखता हूँ कि तुम मेरे लिए सब कुछ करते हो और मैं तुम्हीं से मुँह मोड़ता हूँ तब मैं लज्जा से नतशिर हो जाता हूँ। परन्तु जब मैं देखता हूँ कि तुम मेरी उसी अवस्था में मेरे पास आते हो और उलटा मुझ को ही मनाते हो तब ।

जब मैं देखता हूँ कि लज्जा के कारण मैं अपने भाव तुम से छिपाता हूँ तब मैं और भी लज्जित हो जाता हूँ। परन्तु जब मैं देखता हूँ कि तुम मेरे उन भावों को जान गये हो तब तो मेरी लज्जा का पारावार नहीं रह जाता।

स्वप्न मात्र

हे प्रियतम, इसका क्या कारण है कि तुम स्वप्न में ही मेरे पास आते हो और मुझे रिझाते हो, परन्तु ज्योंही मैं तुम्हे देखना चाहता हूँ, तुम छाया की भाँति लोप हो जाते हो ?

हे प्रियतम, इसका क्या कारण है कि तुम स्वप्न ही मे मेरे पास आते हो और अपना सङ्गीत सुनाने लगते हो, पर ज्योंही वह मेरे कानो मे प्रवेश करने लगता है, तुम मुझे गभीर निद्रा मे निमग्न कर देते हो ?

हे प्रियतम, इसका क्या कारण है कि तुम' स्वप्न ही में मेरे पास आते हो और मुझे आलिङ्गन करने के लिए हाथ फैलाते हो, पर ज्यों ही मैं तुम्हारी ओर दौडता हूँ त्यों ही शरद-घन-खण्ड की भाँति न जाने कहाँ विलीन हो जाते हो ?

हे प्राणेश, क्या मैं इसका यही अर्थ करूँ कि तुम मुझे प्यार नहीं करते ? पर जब तुम स्वप्न तक में मुझ पर इतनी दया दिखाते हो तब मैं यह अर्थ कैसे करूँ ?

अथवा, क्या तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं यही समझूँ कि मैं सत्य हूँ और तुम मेरे स्वप्न मात्र हो ?

साहस

हे मेरे दयालु स्वामी, तुम यह न समझना कि मैं तुम्हारा मार्ग रोकने के लिए पड़ा हूँ। मैं केवल इस लिए पड़ा हूँ कि तुम मुझे पददलित करते हुए चले जाओ और जिस प्रकार फाल के सघर्ष से क्षेत्र उर्वर हो जाता है उसी प्रकार यह क्षेत्र भी उर्वर होजाय।

हे मेरे दयालु स्वामी, तुम यह न समझना कि अपशकुन के लिए मैं तुम्हारे मार्ग में रो रहा हूँ। वह धूल से भरा है और तुम आरहे हो, इस लिए मैं उसे सींच रहा हूँ। जिस भाव से पथिक उस मेघ को देखता है जो फुहों बरसा कर धूल बैठा देता है उसी भाव से तुम मेरी ओर देखते हुए चले जाओ, इसी आशा से मैं उसे सींच रहा हूँ।

अनुराग-विराग

जब मैं कोई फूल देखता हूँ तब मेरा हृदय तुम्हारा गुण गान करने लगता है। एक छोटे से फूल को तुमने इतने प्रेम से बनाया है। उसमें कितना सौन्दर्य्य भर दिया है और उसे कितनी सजीवता प्रदान की है। मैं उसे देखते देखते उसको तथा अपने को भूल जाता हूँ और तुम्हीं तुम रह जाते हो। अहा! तुम्हारी बातें भी कैसी निराली हैं। तुमने दया के मारे अपने मिलने के कितने द्वार बना दिये हैं।

पर यह कौन है जो आकर मुझे चौंका देता है और मुझे हटाता है? वह कहता है कि—"हटो, भागो। यह विश्व तो माया का जाल है, इसमें फँस कर तुम नष्ट हो रहे हो। इससे बचो। वह ठगिनी तो तुम्हें उससे दूर लिये जा रही है जो सब जगह है।"

कैसी उलटी बात है। जब सब जगह तुम्हीं हो तब कोई तुम से दूर कैसे जा सकता है? और, यदि कुछ काल के लिए उसी की बात मानलें कि यह विश्व माया का जाल है, तब भी तो इसके बाहर जाने का उपाय नहीं।

हे नाथ! यह वाटिका तुम जिसके माली हो और जिस पर तुम्हारा इतना वात्सल्य है कि इसका समस्त अशिव अपने ऊपर

मोहन

सन्ध्या को जब दिनभर की थकी मांदी छाया वृक्षों के नीचे विश्राम लेती है और पक्षिगण अपनी चहचहाट से उस की थकावट दूर करते हैं तथा मैं भी श्रान्त हो कर अपना शरीर भार पटक देता हूँ तब तुमने, मधुर गान गुनगुना कर मेरा श्रम दूर करके, और मेरे बुझे हृदय को पुनरुज्जीवित कर के, मुझे मोह लिया है।

वर्षा की रात्रि में जब प्रकृति अपने को सारे ससार से छिपा कर सम्भवत अभिसार करती है तब तुमने मृदङ्ग के घोर में मेरी ही हृदय-गाथा सुना सुना कर मुझे मोह लिया है।

जब शान्तिवसना कुसुदमालिनी प्रकृति पर चन्द्र अमृत बरसाता है और मैं विशाल दृग्गोचर की ओर देखता देखता अपने ज्ञात विचारो में अज्ञात हो जाता हूँ तब तुमने मुझे अपनी वसी के तानतरङ्ग के पीयूष से प्लावित करके मोह लिया है।

प्रात काल, जब सूर्य्य अपने राग से कमल-वन को तथा पक्षिगण अपने राग से स्तब्ध प्रकृति को जगाते हैं तब तुमने भी अपने राग से मेरे हृत्कमल और प्रकृति को जगा जगा कर मुझे मोह लिया है।

प्रेम की प्रबलता

तुम उस पार हो मैं इस पार हूँ। बीच में अपार पारावार है किन्तु मैं तुम से मिलने के लिए अपनी टूटी फूटी डोंगी छोड़ देता हूँ। मुझे भय नहीं।

भय की परिधि सङ्कीर्ण है, प्रेम की विस्तृत। वह इस में समा जाती है। जिस प्रकार सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से देखने में दृश्य-वस्तु और ही रूप में दिखाई पड़ती है उसी प्रकार प्रेम की दिव्य दृष्टि से ये सब पदार्थ स्वर्गीय रूप में दिखाई पड़ते हैं। भय का अन्त लौकिक अवलोकन के साथ हो जाता है।

मेरी डोंगी आगे बढ़ती जाती है। वे ही लहरें जो बड़े बड़े पोतों को डुबा देती हैं, मेरी डोंगी को थपकियाँ दे दे कर बढ़ा रही हैं और प्रतिक्षण तुम्हारी दूरी मुझसे दूर होती जाती है।

मोहन

सन्ध्या को जब दिनभर की थकी मांदी छाया वृक्षों के नीचे विश्राम लेती है और पक्षिगण अपनी चहचहाट से उस की थकावट दूर करते हैं तथा मैं भी श्रान्त हो कर अपना शरीर भार पटक देता हूँ तब तुमने, मधुर गान गुनगुना कर मेरा श्रम दूर करके, और मेरे बुझे हृदय को पुनरुज्जीवित कर के, मुझे मोह लिया है।

वर्षा की रात्रि में जब प्रकृति अपने को सारे ससार से छिपा कर सम्भवत अभिसार करती है तब तुमने मृदङ्ग के घोर मे मेरी ही हृदय-गाथा सुना सुना कर मुझे मोह लिया है।

जब शान्तिवसना कुमुदमालिनी प्रकृति पर चन्द्र अमृत बरसाता है और मैं विशाल दृग्गोचर की ओर देखता देखता अपने ज्ञात विचारो में अज्ञात हो जाता हूँ तब तुमने मुझे अपनी वसी के तानतरङ्ग के पीयूप से प्लावित करके मोह लिया है।

प्रात काल, जब सूर्य्य अपने राग से कमल-वन को तथा पक्षिगण अपने राग से सुप्त प्रकृति को जगाते हैं तब तुमने भी अपने राग से मेरे हृत्कमल और प्रकृति को जगा जगा कर मुझे मोह लिया है।

सङ्गठन

हे नाथ, मुझे पूर्ण, अगाध और अनन्त सागर बना दो। मुझ में नित्य आनन्द की तरङ्गें उठा करें और मैं अपनी असीम सीमा में बँधा रह कर स्वतन्त्रता से कल्लोल किया करूँ।

नद, नदियाँ जो कुछ मुझ से मिलें, मुझ में लीन होजायँ पर मेरा स्वरूप ज्यों का त्यों रहे, तथा वडवा के निरन्तर दहन से भी मेरी पूर्णता, अगाधता और अनन्तता बिलकुल कम न हो।

हे पार्वण चन्द्र, जब तुम अनुराग पूर्ण होकर मेरे वक्ष पर उदित हो तब हर्ष और अभिमान से मत्त हो कर मैं फूला न समाऊँ और रजत हास्य हँसता हुआ नाचने लगूँ तथा तुम्हारे कोमल करों से रञ्जित वेला को प्रेम-विह्वल होकर बार बार चूमने लगूँ।

प्रभो, मुझे रत्नों का आकर बना कर अपने लावण्य से भर दो।

आनन्द-गीत

मेरे गीत आनन्द-सौरभ से बसे हुए हैं।

तुम्हारे पाद-पल्लव के स्पर्श से मेरा मन-अशोक लदबदा कर फूल उठता है और उसके बोझ से नत होकर आनन्दामोद बगराने लगता है। वह आमोद, जिससे मैं स्वय मत्त हो जाता हूँ।

तुम्हारा नखचन्द्र देख कर मेरा मानस, रत्नाकर हो जाता है और अखण्ड आनन्द के गीत गाने लगता है। और तुम्हारी कृपा का क्या कहना। तुम उसपर पीयूष वर्षण करके उसे अमृतमय बना देते हो।

मित्र, भला जब तुम अपने करो से मेरे हृत्कमल को खोलते हो तब वह कैसे न खिल कर आनन्द-मरन्द बहावे और सारे सर को उसमें मग्न कर दे।

ऋतुराज, तुम कुसुमो के कोष और सौरभ के सागर से सज कर मेरे मन पिक से मिलते हो। फिर वह आनन्द से पागल होकर पञ्चम-गान की धुन बाँध के अपने प्राण की पर्युत्सुकता को पद्य दिये बिना कैसे रह सकता है?

मयूर तो मेघ को विलोक कर केवल इतना ही प्रसन्न होता है कि उसे अपने नृत्य और गीत से प्रकट कर देता है। पर इसका आनन्द इतना अपार है कि अपने गीत के नृत्य से उसका कुछ परिचय देने की चेष्टा करके यह अपने को धन्य धन्य समझता है।

प्रकृति और कला

मैंने तुम्हें अपनी प्रकृति अर्पित कर दी है। तो भी मैं तुम्हारे पास अपने प्राकृतिक रूप में नहीं आता। मैं सज कर तुम्हारे पास आता हूँ। क्या लोकलज्जा से? नहीं। कला के सहारे मैं तुम्हें और भी मोहित करना चाहता हूँ।

परिणाम उलटा होता है। तुम मेरी ओर तो ध्यान नहीं देते, उसी के देखने में लीन हो जाते हो। और उसी की आलोचना में समय बीत जाता है।

हे प्रियतम, अब मुझे अपना मिथ्या-विश्वास मालूम हो गया। अब मैं तुम्हारे पास निस्सज्ज होकर आऊँगा। तुम मेरा प्रकृत रूप देखो और उसी की आलोचना करो।

प्रेम-परिचय

जब मैं तुम्हारे सामने नाचने लगता हूँ तब तुम मेरी ओर एकटक देखते हुए मुझ पर अमृत बरसा कर मुझे ऐसा मत्त क्यों कर देते हो कि मेरी गत बिगड़ने लगती है और मेरे पैर ठीक नहीं पड़ते। क्या तुम्हें इसी में सुख मिलता है ?

तुम्हारा चेटक कैसा विलक्षण है कि मैं तो तुम्हें मोहित करने को नाचता हूँ पर तुम उलटा मुझे ही मोहित करके अपना मनमाना नाच नचाते हो।

मैं समझा। मुझ पर तुम्हारा प्यार मेरे प्रेम से कहीं बढ़ा हुआ है। इसी से तुम मेरा मन बार बार अपनी ओर खींच लेते हो।

पर, हे प्रियतम, इसकी क्या आवश्यकता ? मैंने तो तुम्हे आत्मसमर्पण कभी का कर दिया है। बस अब तो—मुझे छाती से लगा लो।

आकांक्षा

हे नाथ, मेरी बुद्धि को ऐसा पलट दो कि मैं घृणित जीवों में मोद और दुखियो में सुख पाऊँ।

हे नाथ, मुझे वह बल दो कि मैं निर्बलो का साथ दूँ।

हे नाथ, मुझे वह दृष्टि दान करो कि मैं नीचो को ऊँच देखूँ।

हे नाथ, निर्धनो को मेरा धन बनाओ और—राजाओ का नहीं—दरिद्रों का मुझे सेवक बनाओ।

हे नाथ, मुझे पराधीनो का अधीन बनाओ।

साथ ही हे नाथ, मुझे वह गर्व भी दो जिसके कारण तुम हो।

कृपालु कर्णधार

हे मेरे नाविक, यह कैसी बात है कि जब मेरी नाव मँझधार में थी तब तो तुम्हें हटा कर मैंने डाँड ले लिये थे और सगर्व तुम्हारे आसन पर आसीन होकर बड़ा भारी खिवैया बन बैठा था। पर जब वह धार से पार होकर गम्भीर जल में पहुँची तब मैं हार कर उसे तुम्हारे भरोसे छोड़ता हूँ।

तब तो नाव धार के सहारे बह रही थी, खेने की आवश्यकता ही न थी। इसी से मेरी मूर्खता न खुली। पर अब? अब तो इस गम्भीर जल से चतुर नाविक के बिना और कौन नाव निकाल सकता है?

परन्तु मैं तुम्हारी बड़ाई किस मुख से करूँ। तुम मेरी मूर्खता और अभिमान तथा अपने अपमान की ओर नहीं देखते और सप्रेम डाँड लेकर नाव किनारे की ओर चलाते हो।

अस्थायित्व में स्थायित्व

तुम खड़े रहते हो और मैं अपनी क्रीड़ा में मस्त रहता हूँ। तुम्हारी ओर ध्यान ही नहीं देता। परन्तु तुम मुझे छोड़ते नहीं।

मेघ-वृन्द अमृत बरसाता है और पृथ्वी लहलही हो जाती है। चातक तथा कोकिल गान की होड़ करते हैं, जिससे पुलकित हो कर उन का गान सवहन करने वाले पवन को सुरभित कर देता है।

दिन बीतता है, रात होती है। फिर भगवान् अंशुमाली धरा को अपने अंशुओं का अंशुक पहनाते हैं। पुनर्वार रजनी चराचर के विश्राम के लिए अन्धकार-मिस निद्रा की चादर उढ़ा देती है।

प्रकृति अपने काम को नहीं छोड़ती। मैं अपनी धुन में मस्त हूँ और तुम मेरे संग रहने में पक्के हो।

अचानक प्रतिघात होता है और मैं अपनी क्रीड़ा से विमुख होता हूँ। तब मैं क्या देखता हूँ कि तुमने मेरे उन्हीं क्षणिक खेलों की एक दृढ़ और नित्य शृङ्खला बना दी है जिस की हर कड़ी पर तुम्हारी छाप है।

मेरे आनन्द का ठिकाना नहीं रहता।

आतुरता

मुझे तुम्हारे पास पहुँचने की जल्दी भी पड़ी है और मैं तुम्हारे मन्दिर के मार्ग पर कब से चल भी रहा हूँ। फिर भी मैं तुम्हारे पास अब तक पहुँचा नहीं।

इसका कारण है। औत्सुक्य के मारे मैं बार बार पीछे फिर कर देखने लगता हूँ कि कितनी राह कटी और इसमें समय नष्ट होता जा रहा है।

परन्तु इसमें एक उपकार हुआ। ज्यों ज्यों समय बीतता है त्यों त्यो मेरी विरहव्यथा भी बढ़ती जा रही है। अब मुझ से एक क्षण भी तुम्हारे बिना रहा नहीं जाता। मैं अपनी आँखें बन्द करके तुम्हारी ओर बढ़ता हूँ।

अस्थायित्व में स्थायित्व

तुम खड़े रहते हो और मैं अपनी क्रीड़ा में मस्त रहता हूँ। तुम्हारी ओर ध्यान ही नहीं देता। परन्तु तुम मुझे छोड़ते नहीं।

मेघ-वृन्द अमृत बरसाता है और पृथ्वी लहलही हो जाती है। चातक तथा कोकिल गान की होड़ करते हैं, जिससे पुलकित हो कर उन का गान सवहन करने वाले पवन को सुरभित कर देता है।

दिन बीतता है, रात होती है। फिर भगवान् अंशुमाली धरा को अपने अंशुओं का अंशुक पहनाते हैं। पुनर्वार रजनी चराचर के विश्राम के लिए अन्धकार-मिस निद्रा की चादर उढ़ा देती है।

प्रकृति अपने काम को नहीं छोड़ती। मैं अपनी धुन में मस्त हूँ और तुम मेरे संग रहने में पक्के हो।

अचानक प्रतिघात होता है और मैं अपनी क्रीड़ा से विमुख होता हूँ। तब मैं क्या देखता हूँ कि तुमने मेरे उन्हीं क्षणिक खेलों की एक दृढ़ और नित्य शृङ्खला बना दी है जिस की हर कड़ी पर तुम्हारी छाप है।

मेरे आनन्द का ठिकाना नहीं रहता।

आतुरता

मुझे तुम्हारे पास पहुँचने की जल्दी भी पड़ी है और मैं तुम्हारे मन्दिर के मार्ग पर कब से चल भी रहा हूँ। फिर भी मैं तुम्हारे पास अब तक पहुँचा नहीं।

इसका कारण है। औत्सुक्य के मारे मैं बार बार पीछे फिर कर देखने लगता हूँ कि कितनी राह कटी और इसमे समय नष्ट होता जा रहा है।

परन्तु इसमे एक उपकार हुआ। ज्यों ज्यों समय बीतता है त्यों त्यो मेरी विरहव्यथा भी बढती जा रही है। अब मुझ से एक क्षण भी तुम्हारे बिना रहा नहीं जाता। मैं अपनी आँखें बन्द करके तुम्हारी ओर बढता हूँ।

संसार की भूल

संसार तुम पर हँस रहा है कि तुम उसकी तुलना प्रकृति से करते हो और प्रकृति के सहारे उसे पाना चाहते हो।

हे परम आत्मन्, तो इसका उत्तर मैं क्या दूँ ? क्या मैं यह नहीं कह सकता कि यह प्रकृति है किस की। विश्व किसकी [illegible] नहीं है। फिर यदि मैं तुम्हारी तुलना तुम्हीं से करता हूँ और तुम्हारे ही सहारे तुम्हें पाना चाहता हूँ तो क्या भूल कर रहा हूँ ?

प्रेम-स्वरूप, इससे इतर और कौन अवस्था हो सकती [illegible] तुम स्वयं अपनी प्रकृति में लिपटे हो तब हम कैसे [illegible] सकते हैं ?

[illegible] ! यह भी तुम्हारी लीला है कि संसार के अचानक [illegible] करके उसे बे राह की राह पर लगा

कच्चे घट में अमृत

तुम अमृत को बार बार कच्चे घटों में भरते हो और मैं उन्हें गलते देखता हूँ।

मुझे अचरज होता है कि अमृत के पात्र बन कर भी वे क्यों नष्ट होते हैं और मैं पुकार उठता हूँ कि तुम्हारा अमृत झूठा है।

तुम कुछ बोलते नहीं और मैं समझता हूँ कि तुम निरुत्तर होगये।

पानी बरसने से मैं मिट्टी को गलते देखता हूँ। पर वही गली मिट्टी जब हरी हो जाती है तब मेरी आंखें खुलती हैं। मैं जो उन गले हुए घटों की ओर देखता हूँ तो मुझे मालूम होता है कि उनके प्रत्येक कण को बेध कर सुधा ने उसे अमरता प्रदान की है।

बन्धन की आवश्यकता

यह न कहो कि मृदङ्ग भीतर से शून्य है। इसमें अनन्त तत्त्व भरा है।

कैसी विचित्र इसकी बनावट है। एक खोखले दारु-खण्ड पर दोनों ओर चमड़ा मढ़ा है, और वह गुणों से भली भाँति जकड़ा है।

तुम्हारी थपकियों से कै बार इसने ससार को मोहित नहीं किया और कौन ऐसा मधुर घोर है जो इससे नहीं निकला ?

किन्तु अब तुम कर क्या रहे हो। कहीं इसके गुणों को न निकाल डालना। नहीं तो यह किस काम का रह जायगा। उन्हीं मे बँधे रहने से तो यह अपनी मर्यादा में स्थित है।

आत्म-रक्षा

मैं अपने प्राणों की प्रेमपूर्वक रक्षा इस लिए नहीं करता कि मुझे तुमसे मिलने की आशा है। तुम्हारा आना तो निश्चित है, फिर आशा कैसी ?

उन पर मेरा ममत्व इस लिए है कि मैं उन्हें तुम्हारे अर्पण कर चुका हूँ और वे तुम्हारी वस्तु हैं।

इसी से मैं इस भाँति उनकी रक्षा करता हूँ।

तुम जब औचक आकर अपनी धरोहर माँग बैठोगे तब तुम्हें मेरा प्रेम और परिश्रम प्रकट होगा।

क्रय-विक्रय

जिन मणियों को मैंने बड़े प्रेम से कृत्याकृत्य, सभी कुछ करके संग्रह किया था उनको उन्होंने मोल लेना चाहा। यदि दूसरे ने ऐसा प्रस्ताव किया होता तो मेरे क्षोभ का ठिकाना न रहता। अपने शौक की चीज बेचनी? कैसी उलटी बात है। पर न जानें क्यों उस प्रस्ताव को मैंने आदेश की भाँति अवाक् होकर शिरोधार्य्य किया।

मैं अपनी मणि-मञ्जूषा लेकर उनके यहाँ पहुँचा पर उन्हें देखते ही उनके सौन्दर्य्य पर ऐसा मुग्ध हो गया कि अपनी मणियों के बदले उन्हें मोल लेना चाहा। अपनी अभिलाषा उन्हें सुनाई। उन्होंने सस्मित स्वीकार करके पूछा कि किस मणि से मेरा बदला करोगे? मैंने अपना सर्वोत्तम लाल उन्हें दिखाया। उन्होंने गर्व-पूर्वक कहा—अजी, यह तो मेरे मूल्य का एक अंश भी नहीं। मैंने दूसरी मणि उनके आगे रक्खी। फिर वही उत्तर। इस प्रकार उन्होंने मेरे सारे रत्न ले लिये। तब मैंने पूछा कि मूल्य कैसे पूरा होगा? वे कहने लगे कि तुम अपने को दो तब पूरा हो।

मैंने सहर्ष आत्म-अर्पण किया। तब वे खिलखिला कर आनन्द से बोल उठे—लो, तुम मुझे मोल लेने चले थे, पर मैंने तुम्हीं को मोल ले लिया।

मैं गद्गद हो उठा। आज परम मङ्गल हुआ। मुझे अत्याचार में सुख मिला, जिसे मैं अपनाना चाहता था उसने स्वयं मुझे अपना लिया।

वास्तविक मूल्य

मेरी वस्तुओं को वे मुहँमाँगे दामों पर ले जाया करते और मैं नित्य सब बेच कर लौटता।

सभी मेरे भाग्य की सराहना करते। पर किस भाव से, कह नहीं सकता। अन्तर का हाल जानने का सामर्थ्य मुझमे कहाँ ? मैं तो उनकी बातो को सच ही समझता।

एक दिन वे न आये। सन्ध्या हो गई। सूर्य्य अपनी अन्तिम स्वर्ण-किरणों को अन्धकार के हाथ बेच कर विश्रान्त हुआ। मैं हाथ पर हाथ दिये बैठा था। पर विचलित न हुआ था। समस्त निर्मूल्य वस्तुओं को प्रतिदिन मन-चाहे दामों पर बेंच कर एक दिन बिना बिक्री के सन्तोष न होना अचरज की बात है।

फिर भी उन्हें लेकर घर लौटना मुझे भारी जान पडा।

आज मैंने उन्हें वास्तविक मूल्य, निर्मूल्य, पर बेचने का उपक्रम किया, पर किसी ने भी न लिया। तब मैंने उन्हें वहीं बिखरा दिया और अपनी आँखो, उन्हें प्रकृति को सस्नेह अपनाते देखा।

निरुद्देश परिश्रम की सफलता

मैं एक सूखी नदी के किनारे निरुद्देश बैठा था। जी घबराने लगा सो मैंने इधर उधर फैले पत्थर के ढोके उठा उठा कर उसमें इस पार से उस पार तक रखना प्रारम्भ किया। कुछ समय तक यही क्रम चला। अन्त को मैं, थक कर विरत हुआ।

आज, बरसात में, वह नदी वेग से बह रही है। कगारे पर के वृक्ष प्रथम क्षण में हिलते, दूसरे मे झुकते और तीसरे में धार मे बहते दिखाई पड़ते हैं। पानी प्रति पल बढ़ता जा रहा है, पर मुझे उस पार जाना आवश्यक है। और आज मुझे वही निरुद्देश चुनी हुई पत्थर की पंक्ति सेतु का काम देती है।

असम्भव

मैंने तुमसे जो कार्य्य अपने ऊपर लिया है एक ओर तो उसे पूरा करना मेरा कर्तव्य है और मुझे उसे पूरा करने की जल्दी भी पड़ी है, दूसरी ओर उसका करना मुझे असम्भव जान पड़ता है।

जितना बड़ा यह काम है मैं उतना ही छोटा हूँ औत्सुक्य के मारे मेरा हृदय उछल रहा है।

अब तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ ?

तुम कहते हो—"असम्भव का नाम न लो, इस सम्भव विश्व में असम्भव कहाँ।" मैं निरुत्तर हो जाता हूँ और नत-शिर होकर प्राणपण से काम में लग जाता हूँ।

संस्कार

हिमालय की चोटियों पर मुझे अमूल्य रत्न बिखरे हुए दीख पड़े। मैं उन्हें बीनने लगा। कुछ घड़ी दो घड़ी का काम तो था नहीं, कितने ही दिनों में मैंने सारे रत्न बीन पाये।

अब ? अब लालसा प्रबल रूप धारण करके संस्कार में परिणत हो गई थी। मुझसे, उस समय, बिना बीने चैन न पड़ता था। पर कुछ रत्न तो पड़े न थे, मैं धुन में शिखर के पत्थर ही बीना करता था।

देवताओं को मेरी दशा पर दया आती थी। एक दिन उन्होंने कहा ही तो—क्यों उद्देश-रहित होकर उपल-खण्ड सञ्चित करते हो ? इस संस्कार ने मेरे हृदय का इतना भाग अपना नीड़ बनाने के वास्ते खोखला कर डाला था कि वह इस कथन की गुरुता सँभाल न सका। क्रोध से मैंने उत्तर दिया—आकाश-मण्डल में नक्षत्र भी तो निरुद्देश घूम रहे हैं, उनसे क्यों नहीं पूछते ?

इसी समय मेरे कान में एक भनक पड़ी—पर क्या तुमने यह काम निरुद्देश होकर प्रारम्भ किया था ?

मेरा मोह भङ्ग हुआ।

महत्ता

उन्नत आकाश-स्थित दिनकर पानी के निम्नग स्वभाव की ओर तनिक भी ध्यान न देकर उसे अपने करों से उठा कर हृदय पर स्थान देता है और अपने राग से रंजित, सरस नील नीरद बना देता है, एवं इन्द्र-धनुष का मुकुट पहना कर तथा पवन के पालने पर बिठा कर, उस मराल-मुक्ता-माल्य-मण्डित, चपला-पीताम्बर-धारी घन को घनश्याम का उपमान बना देता है।

इतना ही नहीं, वह उसे इस योग्य कर देता है कि वह अपनी शीतल स्निग्ध छाया के नीचे सन्तप्त संसार को सुखी करे और पृथ्वी पर भूरि भूरि जीवन-वर्षा करे।

हे प्राणवल्लभ, इसी भाँति तुम भी मेरी नीचता की ओर न देख कर अपनी उच्चता से, करुणा-कर पसार कर इस क्षुद्र जन को अपनी छाती से लगा के, कुछ और ही बना देते हो।

जगत् का पागल

तुम कुछ जानते हो ? सारा जगत् मुझे पागल कहता है। और कहे कैसे न ? यदि मुझे उसका पूरा भरोसा होता तो मैं उसी के मार्ग पर चलता। पर उसमें तो मुझे सहारा देने वाला कोई है ही नहीं।

मुझे विश्वसनीय आश्रयदाता तो तुम्हीं मिले, इसलिए मैं तुम्हारे ही मार्ग पर चलता हूँ। जानते हो, सब स्वार्थी होते हैं।

पर तुम्हारे मार्ग मे ऐसी क्या बात है कि उस पर चलने से मैं पागल कहा जाता हूँ। मेरे स्वामी, तुमने तो अपनी सभी रीति जगत् से उलटी रक्खी है। हे विश्वात्मा, ऐसा क्यो ? हे दयानिधे, मुझे बतला दो कि ससार को इस सुख से वञ्चित रखने की निठुराई तुमने क्यो की है।

तुम्हारी माया

मैं तो अपना सरवस तुम्हे दिखा चुका फिर तुम अपने को मुझसे क्यों छिपाते हो। क्या तुम्हें इसी में सुख मिलता है कि मैं तुम्हारे लिए उद्योग करूँ और तुम बैठे बैठे देखो ?

किन्तु नहीं, मैं भूल कर रहा हूँ। तुम्हारा और मेरा सम्मिलन तो अनादि है। यह तो तुम्हारे मोहन मन्त्र का प्रभाव है कि मैं तुम्हें दूर समझता हूँ और मिलने का उपाय करता हूँ।

मैं विमल प्रभा के पास कितने काल लो रहा हूँ। परन्तु तुमने मेरी आंखो पर ऐसी पट्टी बाँध दी है कि अब यदि उसकी एक रश्मि भी उसमें पैठ जाती है तो मेरी आंखो में चकाचौंध होने लगती है। और उसे खोलने में तो मैं इतना डरता हूँ जिसका ठिकाना नहीं। तुम्हारे इन्द्रजाल ने मुझ में यह संशय उपजा दिया है कि इसके खोलते ही आभा के मारे मेरी आंखे फूट जायँगी।

तुमने मुझ पर न जाने कौनसा आवेश कर दिया है कि जिस रंगपटी के पीछे के दृश्यों पर मैं जान देता हूँ उसी को हटाते डरता हूँ।

भला, इस सब से तुम्हें कौन आनन्द मिलता है ?

अभिसार

मेरा अभिसार भी कैसा अनोखा है !

भादो की अँधेरी रात है। काले काले बादलो ने आकाश को आच्छादित कर लिया है, वे मानो अन्धकार में मार्ग न पाने से यहीं जम गये हैं। बिजली तक का कहीं पता नहीं। क्या वह इन काले बादलो मे ठढी पड गई है या अन्धकार के मारे चञ्चला चपला को भी घन-पटल से निकलने का साहस नहीं ?

ऐसे समय मैं प्राणनाथ से मिलने निकला हूँ। न तो मेरे पास दीपक है न मुझे मार्ग मालूम है न उनका निवासस्थान ही। पृथ्वी पङ्कपूर्ण है, वह मेरे पैर पकड कर और प्रबल पवन पल पल पर, मेरे कानो मे, मुझे ऐसा दुस्साहस करने को मना करता है।

पर मैं चल पडा हूँ।

प्राणेश कहीं बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनकी चिन्तना की प्रतिध्वनि मेरे हृदय मे हो रही है, जो मुझे स्थिर नहीं रहने देती और सागर की ओर भागीरथी की भाँति मैं उसी ओर आकृष्ट हुआ चला जा रहा हूँ।

मुझे सूझ नहीं पडता पर मेरे पैर ठीक ठीक पडते हैं।

अकस्मात्

यह पथ सुन्दर दृश्यों से घिरा हुआ है। सुहावने स्निग्ध सघन वृक्ष अपने करों की इस पर छाया किये हुए हैं। पर मेरा ध्यान इन सब की ओर नहीं जाता। मैं अपनी धुन में आगे बढ़ता जाता हूँ।

कब मैं चला, कब प्रातःकाल का स्वागत पक्षियों के कोमल और मधुर कण्ठ ने किया, कब दोपहर की सूचना पवन की सनसनाहट ने दी, कब स्निग्ध पत्तियों को अपने करों से स्पर्श करके उन्हें अनुराग से किसलयों के सदृश बनाता हुआ सूर्य विदा हुआ, मुझे कुछ मालूम नहीं। कब उसके विदा होते ही नभस्सर में लाखों नलिनी खिल उठीं, कब चन्द्रमुखी रजनी आई, इसका भी ज्ञान नहीं।

अकस्मात् मुझे रोमाञ्च होता है। मैं पुलकित हो जाता हूँ। प्रस्वेद-कण के आविर्भाव से मेरा शरीर चन्द्रचुम्बित चन्द्र-कान्त की भाँति हो जाता है। तब मानो मेरी आँखें खुलती हैं और मैं अपने को तुम्हारी बाँहों में, तुमसे चुम्बित होता हुआ, पाता हूँ।

दुरुपयोग

जब मैं तुम से विदा होने लगा तब तुमने प्रेमपूर्वक मुझे अपना लीला-कमल, स्मृति-चिह्न में दिया।

जब मैं वढता हूँ तब मुझे ऐसा भासित होता है कि वह तो चक्र है, जिसके सहस्रों आरो की चमक से मेरी आँखो में चकाचौंध हो रही है।

मार्ग सघन था। कितने ही वृक्ष आनन्द से झूम कर झुक रहे थे। पर मैं अपने गर्व मे कहता कि ये मार्ग—अवरोध का उपक्रम कर रहे हैं। और, उन्हें चक्र से काट देता।

अब मैं तुम्हारे मन्दिर के पास पहुँच कर, असमजस में पडा हुआ, रुक गया हूँ।

तुमने तो मुझे अपना लीला-कमल दिया था, मैं तुम्हें रुधिर-दिग्ध चक्र किस मुँह से दिखाऊँगा।

अपना, पराया

कांटेदार झाड को देखते ही मैं काटने पर कटिबद्ध होता हूँ। पर गुलाब, केवडा और कमल भी तो कांटेदार हैं, फिर मैं उन्हें नष्ट क्यों नहीं करता ? उलटे जी जान से उनकी सेवा करता हूँ। क्या उनके क्षणभङ्गुर फूलों पर मेरा इतना प्रेम है ?

नहीं, सो बात भी तो नहीं। यदि पराई फुलवारी में उन्हीं गुलाब, केवडा वा कमल को मुरझाते देखता हूँ तो निश्वासपूर्वक माली को प्रमत्त कहने में मेरा इति-कर्तव्य होजाता है।

अरे, यह कैसा ज्ञान है जो हम से ऐसे अज्ञानमय और सङ्कीर्ण काम कराता है।

बुद्धि के अधिष्ठातृ देवता, क्या मेरी यह न्यायअसङ्गत-बुद्धि ज्यों की त्यो बनी रहेगी ?

आनन्द की खोज

आनन्द की खोज में मैं कहाँ कहाँ न फिरा ? सब जगह से मुझे उसी भाँति कलपते हुए निराश लौटना पड़ा जैसे चन्द्र की ओर से चकोर लडखडाता हुआ फिरता है।

मेरे सिर पर कोई हाथ रखने वाला न था और मैं रह रह कर यही बिलखता कि जगन्नाथ के रहते भी मैं अनाथ कैसे रहता हूँ, क्या मैं जगत् के बाहर हूँ।

मुझे यह सोच कर अचरज होता कि आनन्द-कन्द मूलक इस विश्व-वल्लरी में मुझे आनन्द का अणु मात्र भी न मिले। हा ! आनन्द के बदले मैं रुदन और शोच को परिपोषित कर रहा था।

अन्त को मुझ से न रहा गया। मैं चिल्ला उठा—आनन्द, आनन्द, कहाँ है आनन्द ! हाय ! तेरी खोज में मैंने व्यर्थ जीवन गँवाया। बाह्य प्रकृति ने मेरे शब्दों को दुहराया, किन्तु मेरा आन्तरिक प्रकृति स्तब्ध थी। अतएव मुझे अतीव आश्चर्य हुआ। पर इसी समय ब्रह्माण्ड का प्रत्येक कण सजीव होकर मुझसे पूछ उठा—क्या कभी अपने आप में भी देखा था ? मैं अवाक् था।

सच तो है। जब मैंने—उसी विश्व के एक अंश—अपने आप तक में न खोजा था तब मैंने यह कैसे कहा कि समस्त सृष्टि छान डाली ? जो वस्तु मैं ही अपने आप को न देसका वह भला दूसरे मुझे क्यों देने लगे ?

श्लाघनीय स्वार्थ

मैं कैसे कहूँ कि तुम से प्रेम करता हूँ।

अपने सुख की प्राप्ति के लिए, अपने को ही यातना से बचाने के लिए मैंने आत्मसमर्पण कर डाला है।

कोयल अपने बच्चों का पालन-पोषण कराने के लिए उन्हे दूसरे नीड मे रख आती है, कुछ दूसरी पक्षिणी को पुत्रवती बनाने के लिए नहीं।

तब तो मैं स्वार्थी और आत्मप्रेमी मात्र ठहरा। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कहाँ रहा। परन्तु जब तुम मेरे हृदय से पूछ बैठते हो कि क्या हम तुम दो हैं, तब मैं निरुत्तर हो जाता हूँ।

वञ्चित

मेरे पास एक रत्न था। वह ऐसा नेत्र-रञ्जक था कि उसके देखने से जी न भरता था। मैं उसे दिन-रात देखा करता। पर किसी को दिखाता न।

ऐसी रञ्जक वस्तु को देखने से समार वञ्चित रहे, मैं ही उससे बढा रहूँ, इस भावना के अभिमान से मैं फूला न समाता था।

अन्त को एक दिन मेरा जी भर गया। मेरे लिए उसमें कोई नवीनता न रह गई और मैंने उसे राज-पथ पर फेंक दिया।

अब, जो उधर से निकलता वही उसे देखता रह जाता और भूरि भूरि प्रशसा करता। प्रत्येक जन उसमें एक न एक विशेषता निकालता और यही कहता कि इसके मालिक के भाग्य धन्य हैं।

मुझ मे भी नई भावनाओं का आविर्भाव हुआ। बिलकुल भिन्न दृष्टि से उसे मैं देखने लगा और प्रतिक्षण मुझे उसकी वास्तविक नवीनताएँ मालूम होने लगीं। मेरे आनन्द की सीमा न थी।

रह रह कर सोच होता था तो बस यही कि इतने दिनों इसे जगत् से छिपा कर मैं कितने आनन्द से वञ्चित रहा।

श्लाघनीय स्वार्थ

मैं कैसे कहूँ कि तुम से प्रेम करता हूँ।

अपने सुख की प्राप्ति के लिए, अपने को ही यातनाओं से बचाने के लिए मैंने आत्मसमर्पण कर डाला है।

कोयल अपने बच्चों का पालन-पोषण कराने के लिए उन्हें दूसरे नीड में रख आती है, कुछ दूसरी पक्षियों को पुत्रवती बनाने के लिए नहीं।

तब तो मैं स्वार्थी और आत्मप्रेमी मात्र ठहरा। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कहाँ रहा। परन्तु जब तुम मेरे हृदय से पूछ बैठते हो कि क्या हम तुम दो हैं, तब मैं निरुत्तर हो जाता हूँ।

कर्म्मों के अर्थ

तुमने अपनी मुरली की मधुर तान से मुझे मोह लिया और जो जो मन में आया मुझसे कराया। मैं ऐसा मोहित हो रहा था कि जो कुछ करना पड़ा उसका कुछ भी अर्थ न समझ सका।

संसार मेरे उन कर्म्मों का मनमाना अर्थ करता है। किसी को उनमें सौन्दर्य्य और सूक्ष्मता दिखाई देती है और कोई उन्हें बीभत्स और भद्देपन का नमूना समझता है। परन्तु जब उनका अर्थ मैं ही नहीं समझ सकता तब दूसरे क्या समझेंगे? तुम उनके नियन्ता हो, तुम्हीं उनके अर्थ जानो।

स्वामी, मुझे उनका अर्थ और हेतु समझने की दरकार नहीं। मुझे तो उस तान की चसक पड़ी है, वही सुनाते रहो और जो जो मन मे आवे वही काम लो।

स्वयम्

हाट का समय बीत जाने पर मुझे वहाँ जाने की सुध आई। कितनी ही आवश्यक वस्तुएँ लेनी बेचनी थीं। मैं विकल हो उठा।

अब क्या हो सकता था। सन्ध्या वेला थी। प्रतीची ने दिन भर के थके मांदे सूर्य का स्वागत किया और उसने उसका आतिथ्य अनुराग से अंगीकार करके विश्राम लिया। सब अपना अपना काम करके लौट रहे थे। देख देख कर मैं तड़पने लगा। मेरी दशा बस वह पंछी जान सकता है जो बसेरे के लिए अपने घोंसले को नहीं लौट सकता।

अब मेरी कुन्डी खड़की। मैंने द्वार खोल तो दिया, पर न जाने क्या बड़बड़ाते हुए।

लो, यह क्या! स्वयं हाट के प्रधान, मुझे जो वस्तुएँ लेनी थीं उन्हें देने तथा जो बेचनी थीं उन्हें लेने के लिए खड़े हैं।

तुम्हारा पीछा

जिस प्रकार प्राची के कुङ्कुमाभ अनुराग का पीछा पार्वण चन्द्र, जिस प्रकार सुखद घटना का पीछा स्मृति, जिस प्रकार मेघध्वान का पीछा मोर की कूक, जिस प्रकार प्रथम वर्षा का पीछा पृथ्वी का सुरभित उच्छ्वास और जिस प्रकार पर्वत स्थली के सिंहनाद का पीछा प्रतिध्वनि करती है उसी प्रकार व्यर्थ मैंने तुम्हारा पीछा किया। क्योंकि मेरे देखते ही देखते तुम अदृश्य हो गये।

अस्तु, मैं हतोत्साह होकर बैठ गया। मेरी आँखें बन्द थीं। मैं तुम्हारे ध्यान में मग्न था। अकस्मात् पपीहा 'पी कहाँ, पी कहाँ' बोल उठा। जानें वह मेरा सहृदु सी था या मुझे खिझा रहा था? चाहे जो रहा हो, मेरा ध्यान उचट गया। मैंने खिन्न हो कर जिधर से उसका शब्द आया था उधर देखा। पर आश्चर्य! देखता क्या हूँ कि तुम मेरी बगल में बैठे हो।

चरण-चिह्न

सवेरा हुआ। दिन का आगमन जान कर तमो-भुजङ्गम उदयाचल की सुनहली कन्दराओं में जा छिपा। जल्दी में उस का मणि छूट गया। मैं भी तुमसे मिलने के लिए घर से वाहर निकल पड़ा। जिधर देखता, तुम्हारे चरण-चिह्न दिखाई पड़ते। मैं जाता तो किधर!

अन्त को मैंने सामने का मार्ग लिया। दोनो ओर सघन वृक्षों की पंक्ति खड़ी थी। नीचे सुकोमल दूर्वादल शोभायमान हो रहे थे। मुझे चलने में श्रान्ति नहीं मालूम होती थी। पर मन मे कुछ भ्रान्ति सी हो रही थी। क्यो? इस लिए कि तुम्हें किधर पाऊँगा।

वृक्षों के पत्तों के वीच से समीर मेरे कानो के समीप हो हो कर निकल जाता था। उसका शब्द तो मेरे हृदय मे पैठ जाता था पर अर्थ समझ मे न आता था।

इसी प्रकार मैं एक निर्जन कानन मे जा पहुँचा। न तो उसकी सीमा दिखाई पड़ती थी न तुम्हारे पद-चिह्नों का अन्त ही।

तव मैंने घवरा कर एक वार ऊँचे स्वर से तुम्हें पुकारा। साथही मुझे जान पड़ा कि किसी ने मेरे कन्धो पर पुलकित करने वाले हाथ रख दिये। एक मीठी खिलखिलाहट भी सुनाई पड़ी। मैंने चौक कर पीछे देखा, तुम कह रहे थे— एक वार लौट कर तो देखा होता।

मधुर मान

अहा ! यह सुख कैसा महान है। प्राणनाथ के मधुर मान का कारण मैंने जान लिया। हृदयेश ने किसी बात पर मान नहीं किया है। भला वे मुझसे कभी वाम हो सकते हैं? उनके मान का एक मात्र कारण मेरे मनाने के हाव-भावों का आनन्द लेना है।

क्या यह अवसर सोच का है? अरे मुग्ध, सुख में दुःख की भावना ! यह सुयोग तो परम भाग्य से प्राप्त हुआ है। इस समय तो अपनी मनाने की कला के आनन्द से प्लावित करके उन्हें और भी मोह लेना चाहिए।

प्रमाद

तुम्हें लुभाने के लिए मैं खूब सज सजा कर घर से बाहर निकला। राजपथ पर भीड थी इससे मुझे रुकना पडा। लोग मेरी ओर देखने और सजावट की प्रशसा करने लगे। भला, प्रशसा किसे पागल नहीं कर देती ? मैं भी अपना प्रकृत उद्देश भूल कर उन्हे अपनी सजावट दिखाने लगा। आनन्द से मेरा हृदय नाच रहा था।

यहाँ तक कि अभिमान ने मुझे अन्धा बना दिया। तुम भी आकर उसी भीड में खडे हो गये और मुझे देखने लगे, पर मैंने तुम्हें न देखा।

सन्ध्या को भीड छँट गई और तुम्हारे दान के बोझ से दबे मगते लौटने लगे, तब मेरी आँखें खुलीं।

परन्तु अब हो क्या सकता था। हाय ! इस दिखावे में मैं तुम्हें न देख सका।

अधूरी याचना

तुम चाहे अपने चरण मुझे न चांपने दो पर हे नाथ, मुझे उनकी धूल में लोटने से न हटाना। मुझे उस में निरन्तर उसी भाँति सना रहने दो जैसे पद्म-पराग मे मधुप और केतकी-रज में करिवर सना रहता है।

मैं कुछ यह नहीं चाहता कि तुम उस पर ध्यान देना। मुझे इस की आकांक्षा ही नहीं। बस, मुझे इस अपार सुख से हटाना भर मत, इतनी ही याचना है।

अभाव में आविर्भाव

मैं अपने प्रलाप का गर्व कैसे न करूँ, जिसने तुम से मेरा सलाप कराया है, और मैं अपने अनमिल जीवन को कैसे अहोभाग्य न समझूँ, जिसने मुझे तुम से मिलाया है।

मैं अपनी अन्धता को कैसे न सराहूँ, जिसने मुझे विश्व-चक्षु दे कर छिपा मार्ग दिखाया है, और मैं अपनी अकिञ्चनता को कैसे धन्य न समझू, जिससे मुझे परम निधि प्राप्त हुई है।

मैं अपने रुदन पर कैसे नाज न करूँ, जिसने मुझे वह गान सिखाया कि मैंने उसे वशीभूत और मुग्ध कर लिया है जिस की चाह मात्र मेरे जीवन की एकमेव वासना थी।

सन्ताप की शीतलता

हे प्रियतम, मैं अपने हृदय के ताप से तुम्हें कदापि व्यथित न करूँगा।

हे मेरे प्राण, भला मैं तुम्हें कभी कष्ट दे सकता हूँ ? अथवा अपने कारण दु:खित होते देख सकता हूँ ?

उसे और तप्त होने दो। वह ताप, मैं आनन्दपूर्वक सहूँगा। मेरा आनन्द इस कारण दूना हो जायगा कि मैंने तुम्हें व्यथित नहीं होने दिया। और जब वह पिघल कर आँखों से बहेगा तब मैं उन ठंढे आँसुओं से दिन-रात तुम्हारे पादाम्बुज सींचूँगा।

अभाव में आविर्भाव

मैं अपने प्रलाप का गर्व कैसे न करूँ, जिसने तुम से मेरा सलाप कराया है, और मैं अपने अनमिल जीवन को कैसे अहोभाग्य न समझूँ, जिसने मुझे तुम से मिलाया है।

मैं अपनी अन्धता को कैसे न सराहूँ, जिसने मुझे विश्वचक्षु दे कर छिपा मार्ग दिखाया है, और मैं अपनी अकिञ्चनता को कैसे धन्य न समझू, जिससे मुझे परम निधि प्राप्त हुई है।

मैं अपने रुदन पर कैसे नाज न करूँ, जिसने मुझे वह गान सिखाया कि मैंने उसे वशीभूत और मुग्ध कर लिया है जिस की चाह मात्र मेरे जीवन की एकमेव वासना थी।

अनादि सङ्गीत

कौन कहता है कि सङ्गीत अस्थायी कला है ? देखो तो, अनन्त में तुम्हारा प्रत्येक स्वर निरन्तर लहरा रहा है। पत्ता पत्ता उसे ताल दे रहा है।

तुम्हारे विश्व के किसी भी अंश में यदि किसी समय ताल,स्वर और नृत्य, देखने में, बन्द हो जाता है तो वह अंश मृत समझा जाता है। भला तुम्हारे इस सरस सङ्गीत बिना यह विराट् साम्राज्य चल कैसे सकता है ?

तुम मुझसे कहते हो कि मैं तुम्हारे गान पर विह्वल और विमुग्ध न होऊँ। यह कैसे हो सकता है ?

इस एकान्त सघन कुञ्ज में तुम गा रहे हो। चारो ओर सरोवरो में कमल फूल रहे हैं। गुलाब की क्यारियाँ खिली हुई हैं। बीच बीच में प्रफुल्ल बेले की वल्लियाँ हैं। मानो नवेली प्रकृति के सौंधे ओठो मे दशन-पंक्ति दमक रही है। भ्रमर मँडरा रहे हैं। परन्तु सब स्तब्ध हैं। तुम्हारे गान के जादू ने उन्हें मोहित कर रक्खा है।

पर मैं ही शान्त नहीं हूँ। शान्त कैसे रहूँ। न जाने कैसे तुम मेरी हृदय-गाथा जान गये हो और उसी को गा रहे हो। मेरा मन तो मरोर मरोर उठता है। फिर मैं विह्वल और विमुग्ध कैसे न होऊँ ?

आज मेरे अहोभाग्य हैं। तुम्हारे गान की बदौलत मेरी हृदय-गाथा अनन्त में निरन्तरता और नित्यता पा रही है।

प्राणेश, तुम मेरे हृदय की समस्त गाथा इसी प्रकार गा डालो।

तुम तो मेरे पास हो

मैं कुटी बन्द करके आसन पर सगर्व बैठा था। उस कुटी को मैं विश्व समझता था और अपने को उसका महाराज। अपने मद में मैं चूर था।

न जानें कैसे तुम भीतर आगये। मन्त्र-मुग्ध की भांति आसन का एक कोना मैंने तुम्हारे लिए छोड दिया। तुम बैठ गये। मैं धीरे धीरे खसकने लगा। उस पर तुम्हारा अधिकार बढने लगा। मैं भूमि पर आगया। तुम आसन पर पूर्णत आसीन हो गये।

मैं निर्निमेष नयनो से, अवाक् होकर, तुम्हारी सुन्दरता निरखने लगा। मुझे उसमें प्रतिक्षण नवीनता मिलने लगी। इधर मेरे हाथ तुम्हारे पैर पलोटने लगे।

अकस्मात् प्रचण्ड पवन चलता है। कुटी हिलने लगती है। घनघोर घटा घिर कर बरसने लगती है। विद्युत्पात होने लगते हैं। प्रलयकाल उपस्थित होता है। पर मैं अशान्त, विचलित या भीत नहीं होता हूँ। क्योंकि तुम तो मेरे पास हो।

जाग्रति

हे नाथ, मुझे उस लोक में जागृत करो जहां मैं सारे संसार के दुःख को अपने ऊपर ले लेने के सुख में मत्त हुआ विचरूँ। निखिल विश्व का ताप जहां मेरे रक्त की ऊष्मा बनाये रक्खे और अनन्त विश्व-वेदना मेरे सङ्गीत की सामग्री बने।

जहां एक मात्र तुम्हीं मेरे सगे हो, और सब प्राणियों की कामना मुझमें एकत्र होकर तुमसे प्रणय करने की शक्ति दे।

जहां भुवन का भुवन मेरा भवन हो और ससीम जीवन के बदले असीम जीवन पाकर मैं तुम्हारे साथ नित्य नई क्रीडा किया करूँ।

समय की सहायता

जिस समय तुम देखते हो कि सूर्य की ज्वाला बरसाने वाली रश्मियों से संसार भस्म हुआ चाहता है, उस समय तुम अपनी करुणा से द्रवित हो कर मेघ रूप में बरस कर सारी पृथ्वी को जीवन प्रदान करते हो। उसी प्रकार जब तुम देखते हो कि सन्ताप से मेरा हृदय भस्म हुआ चाहता है, उस समय तुम मेरी आँखों से सावन-भादो की झडी लगा देते हो और मेरा हृदय शीतल हो जाता है।

जिस समय तुम देखते हो कि विशालकाय गजराज किसी परम लघु उद्वेग से हार कर विचलित हो रहा है, उस समय तुम उसके गण्डस्थलों से मद बहाने लगते हो और वह प्रकृतिस्थ हो जाता है। उसी प्रकार जिस समय तुम देखते हो कि मेरा मन क्षुब्ध हो रहा है और क्रुद्ध सागर में पडे पोत सी मेरी दशा हो रही है उस समय तुम मेरे आंसू बहाने लगते हो और मैं शान्त हो जाता हूँ।

मिलन वेला

प्रियतम से मिलने की वेला आगई।

रागवती उषा आकाश से मिल कर उसमें लीन हो रही है, और सौभाग्य-सूर्य्य का उदय हो रहा है।

दिनकर के लिए पद्म अपना हृदय खोल रहे हैं। भ्रमर गान कर रहे हैं और निस्तब्ध पवन तरङ्गित हो रहा है।

ससार प्रसुप्त है और प्रियतम खड़ा हुआ है। चलो, मिलने का ऐसा अवसर भला कहाँ प्राप्त होगा ?

चुम्बन

दिन भर मैं उनके लिए अपने को सजाने और गर्वपूर्वक दर्पण मे देखने में लगा रहा।

सन्ध्या हुई और सूर्य के वियोग से प्रकृति निस्तब्ध हो गई। सारे दृश्य बदल गये। मैं भी थक कर सो गया।

वे कृपापूर्वक आये पर ममता के कारण मुझे जगाया नहीं। केवल मेरा चुम्बन किया और चल दिये।

उस कोमल चुम्बन से मेरी कठोर निद्रा भग हुई। मैं आँखें मल कर चकित-सा देखने लगा। उनके चरणों की चाँप सुनाई पडती थी। मैंने उनके पीछे दौडना चाहा। पर चुम्बन ही के आनन्द में मैं इतना विह्वल और कृतकृत्य हो रहा था कि मेरे पैर न उठे।

त्वरा

प्राणेश के लिए प्रस्तुत हो कर मैं आँगन मे बैठा हूँ। मेरे हाथो मे सजी हुई आरती का थाल है। पर अभी तक वे आये नहीं।

जिसे समाचार देने को भेजा था वह भी नहीं लौटा। समय चला जा रहा है। आरती के दीपक मन्द पडे जा रहे हैं। क्या जानें कब वे बुझ जायँ।

माला के फूल एक एक करके खिल रहे हैं और उनकी सुगन्धि को पवन चुराये लिये जा रहा है। नूपुरो के घुँघरू बज बज कर एक एक करके झडे जा रहे हैं। कुछ ही समय मे वे नीरव हो जायँगे।

चित्त की मञ्जुल भावनाएँ उद्वेग बन बन कर विनष्ट होती जा रही हैं। पर अब भी समय है। मैं ही उनके पास क्यों न चलूँ।

गान की नित्यता

मैं अपने गीत सुनाने की याञ्चा करता हुआ, ससार भर में घूमा। पर किसी ने सुनने की अभिलाषा प्रकट न की। मेरा एक मात्र उद्देश्य था प्रशसित होना।

अन्त को मैं निराश होकर घर लौट रहा था कि राजपथ में एक नवीन सजीवता आगई। विदित हुआ कि सम्राट् आ रहे हैं। मैं स्तम्भित होकर खड़ा हो गया। देखता क्या हूँ कि वे पाँवपियादे मेरी ओर आ रहे हैं। पास आ जाने पर नम्र होकर मैंने आज्ञा पूछी। वे हँस कर बोले—"सदरे, मैं तुम्हारे पीछे सारे ससार में घूमा हूँ, पर तुम्हारा तो ध्यान ही मेरी ओर न था। इससे अब तक तुमसे अपनी यह याचना न कर सका कि मुझे अपना गान सुनाओ"। याचक से याचना। जिसके लिए सारे ससार ने मुझे विमुख किया उसकी याचना स्वयं सम्राट् करें। अहोभाग्य।

पुलकित होकर मैंने गान आरम्भ किया। प्रेम के मारे मेरा कण्ठ भर रहा था, इससे मैं प्रति शब्द पर रुकता था। मुझे सँभालने के लिए सम्राट् ने मेरा साथ दिया। उनके नव-नीरद निर्घोष-निन्दक निनाद में मेरा स्वर मिल कर समस्त ब्रह्माण्ड में गूँज उठा। सारे अण्ड-पिण्ड उसी की प्रतिध्वनि करने लगे।

तब सम्राट् ने मुझसे धीरे से कहा—"यह प्रतिध्वनि तो अनन्त काल लों होती रहेगी। आओ, हम तुम चलें।"

अभिमान

मैं महाराज की वाटिका में फिर रहा था। देखता क्या हूँ कि एक जन सुमन चुन रहा है। मैं ने क्रोध और दर्प से कहा—जानते नहीं, यह महाराज की वाटिका है। यहाँ ऐसा दु साहस तुमने कैसे किया? वह बेचारा निरुत्तर होगया। और, उसके कम्पित करों ने उन फूलों को मेरे चरणों पर गिरा कर मुझ से क्षमा सी माँगी। पर मेरा क्रोध शान्त न हुआ। मैं ने विकृत स्वर में कहा—फिर इधर आने का नाम न लेना। वह चुप चाप चला गया।

वह तो गया, पर मेरा क्रोध न गया। मैं बडबडाता हुआ महाराज की ओर चला। चलने को तो मैं चला, पर उस क्रुद्धावस्था में भी, मेरे हृदय में कोई पूछ रहा था कि तुम भी तो उसी श्रेणी में के हो। आज महाराज के कृपापात्र हो जाने से उसका यह निरादर! महाराज तुम पर मोहित हुए सही, पर तुम्हारे जान बूझ कर कोई हाव-भाव करने से थोडे ही। तुम भी तो कुछ ऐसा ही कत सूत करते थे। महाराज ने उसमे न जाने कौन सी अदा देखी कि तुम्हें अपना लिया। किंवा, तुम डरते हो कि तुम्हारा पद न छिन जाय, अत यह सारी लीला कर रहे हो। मैंने कुछ ध्यान न दिया। कहा—उँ यह तो हृदय-दौर्बल्य है।

क्रोध का भार न सँभाल सकने से मैं लडखडाता हुआ उन तक पहुँचा।

प्रहरी

सारी रात मैं जागा हूँ। नींद का गुरु भार मेरी हलकी पलकें नहीं सँभाल सकतीं। रात भर पहरा देते देते मेरे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं और अन्धकार मे दृष्टि की समस्त शक्ति एकत्र कर के देखने से मेरी आँखें थक गई हैं।

इस परम निधि के रक्षा का भार मेरे ऊपर था और उसे सफलतापूर्वक पूरा करने का मुझे अभिमान और हर्ष है।

अब समस्त ससार जागृत है। न कहीं तम है, न चोर चाई का डर। तनिक तनिक से भी खटको को, समस्त निशा, सुनने के लिए मेरे कान पूर्ण रीत्या लगे रहे हैं। इस लिए वे सुस्ता रहे हैं और सारे ससार का कोलाहल भी उन्हे चौंका नहीं सकता।

अब मैं सुख से सोऊँगा।

सुध

सम्राट् की सभा जुडी। सब अपने अपने आसन पर आसीन हुए। केवल मैं ही न गया था। सोचा था कि इतने समारोह में किसका ध्यान जायगा।

सम्राट् भी सिंहासन पर आ विराजे। यदि पूर्णचन्द्र के साथ नभोमण्डल के सब तारे भी जगमगायें तो उस शोभा की उपमा मिले।

एक बार दृष्टि दौडा कर उन्होने प्रत्येक व्यक्ति को देख लिया और मुझे न पाकर पूछने लगे।

दूत दौडाये गये। मुझे सम्राट् के सौन्दर्य निरखने का काम सौंपा गया था। विगत सभाओ मे मैंने उनकी जो छटाएँ देखी थी उन्हीं को चित्राङ्कित कर रहा था।

मुझे बाँध कर दूतो ने सम्राट् के सामने उपस्थित किया। दण्ड में आज्ञा मिली कि अब तुम अहर्निशि मेरी छटा निरखा करो।

प्रहरी

सारी रात मैं जागा हूँ। नींद का गुरु भार मेरी हलकी पलकें नहीं सँभाल सकतीं। रात भर पहरा देते देते मेरे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं और अन्धकार में दृष्टि की समस्त शक्ति एकत्र कर के देखने से मेरी आँखें थक गई हैं।

इस परम निधि के रक्षण का भार मेरे ऊपर था और उसे सफलतापूर्वक पूरा करने का मुझे अभिमान और हर्ष है।

अब समस्त ससार जागृत है। न कहीं तम है, न चोर चाई का डर। तनिक तनिक से भी खटकों को, समस्त निशा, सुनने के लिए मेरे कान पूर्ण रीत्या लगे रहे हैं। इस लिए वे सुस्त रहे हैं और सारे ससार का कोलाहल भी उन्हें चौंका नहीं सकता।

अब मैं सुख से सोऊँगा।

प्रतिफल

आधी घडी मैंने सोना चाहा था। पर, अब मैं उठ कर देखता हूँ कि यह तो सन्ध्या हो गई है। सब समय सोने में नष्ट हुआ। सोने के पहले जैसे मुझे उससे अनुराग था उसी प्रकार इस समय प्रकृति को सोने से अनुराग है और कुछ काल में वह भी मेरे समान तिमिराच्छन्न हुआ चाहती है।

सम्पुटित होने वाले सरोजों के साथ साथ मित्र-मण्डल भी सङ्कुचित हो रहा है।

मेरे सहयात्रियों की कितनी ही वस्तुएँ मेरे पास हैं। पर बिना पूछे वे उन्हें ले नहीं गये। अब सारी रात उनकी रक्षा करके प्रात काल जैसे बनेगा उन वस्तुओं को मुझे उन तक पहुँचाना पडेगा।

जागृत्, स्वप्न, सुषुप्ति

जब मैं जागता रहता हूँ तब मेरा मन सोता रहता है और प्रियतम के स्वप्न देखा करता है।

जब मैं निद्रित होता हूँ तब मेरा मन जाग जाता है और उनके साथ विहार करने लगता है तथा मैं उसके सुखद स्वप्न का आनन्दोपभोग करता हूँ।

परन्तु जब सुषुप्तावस्था आती है तब मैं और मेरा अन्त करण दोनो ही तद्रूप हो जाते हैं। क्योंकि उस समय प्राणेश के गाढा-लिङ्गन का सुख मुझे मेरे सर्वस्व सहित मूर्च्छित कर देता है।

मेरी एकान्त कामना है कि मैं नित्य उसी दशा में रहूँ।

अभीष्ट आदेश

इन मालाओं का मेरे आदर करने से क्या लाभ, तुम्हारी और अपनी रुचि का अन्तर मैं क्या जानूँ ?

फूलों के कुछ पौधों की सेवा मुझे सौंपी गई है। अत मैं जी जान से अपने कर्तव्य मे लगा रहता हूँ। एव उनके फूलो को लोढ लोढ कर मैं ये मालाएँ बनाता हूँ।

मैं माला बनाने में अपनी कोई कला उठा नहीं रखता। अपने स्वार्थ से ऐसा करता हूँ। तुमसे पुरस्कार लेना है न !

माला भरी डाली लेकर मैं तुम्हारे सामने वैसे ही प्रणत होता हूँ जैसे प्रपात, सुमन लेकर पर्वत के पद पर गिरता है।

नाथ, तुम्हें इसमें से जो हार रुचे उसे लेकर, पुरस्कार में मुझे वैसी ही माला नित्य भेंट करने की आज्ञा दो।

सङ्कीर्ण पथ

मुझसे तो इस मार्ग पर नहीं चला जाता।

चारों ओर स्निग्ध, श्यामल दूर्वादल-मण्डित मैदान के रहते भी इस रूखी सूखी और ऊबड़ खाबड़ पगडंडी पर चलना भला कोई बात है!

बहुत दिनों से चलती रहने के कारण वह एक लीक सी बन गई है। उसके ऊँचे किनारों से टकरा कर पैर चुटीले हो जाते हैं, और उन किनारों पर की ठूँठी घास बार बार चुभ कर क्रोध से कहती है कि प्रान्तर से चलो और मुझे हरी तो होने दो।

यह पगडंडी इतनी सकुचित है कि इसमें पैर सीधे और खुले पड़ते ही नहीं, पथिक बार बार लड़खड़ाता है एवं वेग से आगे नहीं बढ़ने पाता। कड़ी यह इतनी है कि थोड़ी दूर चलने से ही पैरों में छाले पड़ जाते हैं।

जान पड़ता है, प्रशस्त प्रान्तर से ईर्ष्या कर के ही यह टेढ़ी मेढ़ी हो कर घूम गई है। जो हो, मैं तो खुले पैरों प्रान्तर प्रान्तर राज-भवन की सीध में चल पड़ता हूँ।

माला

ग्रीष्म की दोपहरी में मैं माला बनाने बैठता हूँ।

तटिनी अपने आश्रयदाता तटों को बार बार जलदान से तृप्त करना चाहती है, पर भगवान् अंशुमाली उसे छीन लेते हैं।

वृक्ष अपने लम्बे लम्बे रीते हाथ उठाये इन्द्र से वर्षा की प्रार्थना कर रहे हैं।

ताप से बचने के लिए प्राणी निद्रा का आश्रय लेते हैं। उस समय नीरवता से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जीवन-स्रोत भी गरमी के मारे सूख गया।

ऐसे समय मैं माला बनाने बैठता हूँ। क्योंकि न तो मुझे किसी का सङ्कोच करना पडता है, न मेरा मन विचलित करने के लिए कोई कोलाहल है न वा, कोई टोकने वाला।

इन पुष्पों को मैंने इन्हें प्रबोधित करने वाले प्रभात काल में लोढा था। तब से, इस ऋतु मे। इन्हे मैंने अपने प्रेमाश्रुओं से सींच सींच कर टटका और हिम-सदृश शीतल परन्तु जीवितोष्मा-पूर्ण बनाये रक्खा है।

एकाग्र एव निस्सङ्कोच भाव से मैं इन्हें गुण में पिरोता जाता हूँ। उधर इनकी सिँचाई ज्यों की त्यों जारी है।

मुझे जल्दी पडी है कि जिसके निमित्त यह विडम्बना है उसके गले मे इसे डाल कर कब कृतार्थ हो जाऊँ।

तुम स्वयं आरहे हो

मेरा मन ऊबने लगा, मुझे चलने की चिन्ता हुई। समय कटना भारी हो गया। एक एक करके मैंने अपने सब उपकरण समेटे और उन्हें बांधा।

निश्चिन्त होकर मैं इष्टमित्रो से विदा हुआ। उनकी आंसू-भरी चितवनो ने मुझे तनिक भी विचलित न किया। वरन चलने का समय ज्यों ज्यो निकट आने लगा त्यो त्यो मेरी प्रसन्नता बढने लगी। क्योकि तुम्हारे पास पहुँचने की लालसा प्रबलतम थी।

पर यह क्या ? जब चलने का समय आया तब मेरा हृदय क्यो धडकने लगा। मेरा मन क्यो मचल गया। मेरे पैर बेडी मे जकडे-से क्यों हो गये। देखता क्या हूँ कि तुम स्वय आरहे हो।

उद्देश की सफलता

प्रात काल मैं वाटिका में पहुँचा। चिड़ियो की चहचहाट, भौंरो की गुञ्जार और कलियो की चटकाली के सम्मिलन से वहाँ अपूर्व सङ्गीत होरहा था। सुरभित पवन उसी सङ्गीत की गत पर अपनी चाल साधकर चल रहा था। बालातप भिन्न भिन्न रंगो के फूलो पर पड कर नये नये रंगों की रचना कर रहा था। मैं उद्देश-हीन होकर फूल चुनने लगा। मेरी टोकरी भर गई। तब मैं माला बनाने बैठा। इस में भी कोई उद्देश न था। पर, कह नहीं सकता, शायद मुझे मालाकारी का गर्व रहा हो।

दो पहर के साथ सूर्य्य की किरणे प्रखर हुई। पर वाटिका के कोमल कुसुमो पर उनका असर न हुआ। क्योंकि उनकी सुकुमारता स्वाभाविक थी। बीच बीच में कोयल की कूक से वाटिका की नि स्तब्धता भङ्ग होने लगी। अब धीरे धीरे लोग आने लगे और मुहँमांगा मोल दे दे कर मेरी मालाएँ ले जाने लगे।

सन्ध्या हो चली। पूर्व का सूर्य्य पश्चिम में आ गया। उदय-काल को जिस अनुराग से उसने अङ्गीकार किया था अस्तकाल को भी उसी अनुराग से अपनाया। पक्षी अपने अपने नीडों को लौटने लगे। सुप्त बालक के मुहँ पर जिस तरह हँसी झलक जाती है उसी तरह दिन बीत गया। शिखर को जिस भांति धीरे धीरे कुहरा आच्छादित करता है उसी भाँति अँधेरा बढने लगा। मेरी टोकरी कभी की खाली हो चुकी थी पर न जाने क्यों मैं अब तक वहां बैठा था।

इसी समय वे आये और मुझ से माला मांगने लगे। मालाओं से टूट टूट कर टोकरी में पड़ी हुई पखड़ियों को मैंने यन्त्र की भांति इकट्ठा किया और मन्त्र-मुग्ध सर्प की नाईं उन्हें अर्पण किया। उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया। तत्काल ही मुझे वहां जाने और ठहरने का उद्देश मालूम हो गया। चूम कर वे बोले—'तुम्हारे पास तो देने को इतना भी था, मेरे पास तो इसके सिवा कुछ नहीं'। मुझे आत्म तक विस्मृत होगया और मैं उसी चुम्बन-सुधा के अथाह सागर में निमग्न हो गया।

प्रतिविम्ब

निर्मल, नील आकाश में विमल धवल चन्द्र स्निग्ध गति से चल रहा है।

नाले की यह विस्तीर्ण घाटी उसके मृदु प्रकाश से आलोकित हो रही है। प्रत्येक सैकत-कण में सजीवता सी आ गई है।

दूर दूर पर अकेले वृक्ष खड़े हैं, जिनकी छाया चन्द्रमा के साथ अपनी गति बदल रही है। उन पर बैठे पपीहे कभी कभी, उनके आत्मा की भाँति, बोल उठते हैं।

गुञ्जार करते हुए भृङ्गी इधर उधर उड़ रहे हैं और उनके पारदर्शी पङ्खों से छन छन कर भूमि पर पड़ने वाली चांदनी की सुषमा का क्या कहना!

यह लो, चन्द्र पीयूष-वर्षा करने लगा, और समस्त घाटी उसमें भर गई।

भृङ्गी उसकी मन्द धारा पर बैठ कर कुछ दूर तक बहने का खेल करके प्रसन्न हो रहे हैं। चातक असमय ही में, अपना व्रत छोड़ कर, छक रहे हैं और स्वय चन्द्र इस स्वर्गीय दृश्य पर मोहित हो कर, प्रतिविम्ब के मिस से, उतर कर उसमें जलकेलि कर रहा है।

पर क्या यह दृश्य बाह्य प्रकृति का है?

रुचि

देवता के उस मन्दिर में जहाँ पूर्ण राजस विभव है, यदि मुझसे कोई गाने के लिए कहता है तो मैं स्वीकार नहीं करता। लाख लाख आग्रह करने पर भी मैं अपने हठ से नहीं हटता।

पर उस देव-मन्दिर में जहाँ बहुत दिनो से कोई आता जाता भी नहीं, अर्चा की कौन चर्चा? जो जीर्ण हो कर भग्न हो रहा है, जिस पर दया कर प्रकृति काई से उसकी मरम्मत किया करती है, जिस पर छाया करने वाले वट-वृक्ष की भी कमर झुक गई है और जिसके सामने का सरोवर क्या जाने कितने दिनों से सूखा पडा है तथा पानी में सडी और दीमको की खाई उसकी लाट उसके अस्थि-पञ्जर के समान अब लो खडी है, उस देवालय में बिना किसी के कहे, स्वय अपनी इच्छा और प्रसन्नता से, अश्रु-अर्घ्य प्रदानपूर्वक अपनी हृदय-तन्त्री की उत्तम से उत्तम और करुण से करुण तान सुना कर मैं कृतार्थ होता हूँ।

स्थान

एक दिन मैंने तुमसे घर बनाने के लिए स्थान माँगा। दूतों को आज्ञा हुई कि इसे उचित और रमणीक स्थान दिखा कर मेरे पास लाओ। जो इसे अधिक रुचेगा, दिया जायगा।

मैं दूतों के सङ्ग चला।

पहले वे मुझे पर्वत-शिखर पर ले गये। बोले—"कैसा उत्तम स्थान है। दूर दूर तक के रमणीय दृश्य यहाँ से दिखाई पड़ते हैं। वह देखो, सम भूमि पर की नदियाँ और जंगल कैसे भले मालूम होते हैं। मानो वसुन्धरा ने अपनी अलकों को मोतियों की लड़ों से अलङ्कृत किया है। क्षितिज में रंग-बिरंगे बादल उसकी साड़ी की भाँति शोभित हो रहे हैं। वह, पश्चिम दिशा दिवाकर को अनुरागपूर्वक निमंत्रित कर रही है और वह उसे नत होता हुआ सादर स्वीकार कर रहा है। चारों ओर देखते रहिए और प्राण-पूर्ण पवित्र पवन पान करते जाइए, पर जी नहीं अघाता।"

अब वे एक कन्दरा के पास ले गये—"अहा! इस भूमि को तो देखो। प्रकृति ने मानो इसे सारे संसार से छिपाने के लिए हरियाली में छिपा दिया है। ये निर्झर अपने हिमकणों से यहाँ छिड़काव किया करते हैं और ये पुष्प इसके पद पर फैले हुए हैं। त्रिविध समीर की इस स्थान से इतनी लगन है कि वह इसे छोड़ कर जाता ही नहीं। इसके बीच में यह कन्दरा

स्थित है। पर इसमें दोष यही है कि यहाँ तुम्हीं तुम रहोगे। अपने सिवा और दृश्य नहीं देख सकते" उन्होंने कहा।

•

इसी प्रकार अनेकों स्थान दिखा कर वे मुझे तुम्हारे पास लाये। तुम्हारे पूछने पर मैंने कहा—"प्रभो, मैं तो कन्दरा लूँगा। जहाँ मैं अपने अहङ्कार में मस्त रह सकूँ और अन्य चिन्ता न होने से आत्मरति बढ़े। यों तो पर्वत-शिखर मुझे बहुत रुचा। पर वहाँ हृदय की अशान्ति और बढ़ती है। जैसे जैसे नये और, दूर के दृश्य दिखाई पड़ते हैं वैसे वैसे गोचर के प्रस्तार की कामना बढ़ती जाती है, और—" तुमने बीच ही में रोक कर कहा—"तो आओ, मेरी हृदय-दरी में रमो।"

स्थान

एक दिन मैंने तुमसे घर बनाने के लिए स्थान माँगा। दूतो को आज्ञा हुई कि इसे उचित और रमणीक स्थान दिखा कर मेरे पास लाओ। जो इसे अधिक रुचेगा, दिया जायगा।

मैं दूतो के सङ्ग चला।

पहले वे मुझे पर्वत-शिखर पर ले गये। बोले—"कैसा उत्तम स्थान है। दूर दूर तक के रमणीय दृश्य यहाँ से दिखाई पडते हैं। वह देखो, सम भूमि पर की नदियाँ और जगल कैसे भले मालूम होते हैं। मानो वसुन्धरा ने अपनी अलको को मोतियो की लडो से अलङ्कृत किया है। क्षितिज मे रग-बिरगे बादल उसकी साडी की भाँति शोभित हो रहे हैं। वह, पश्चिम दिशा दिवाकर को अनुरागपूर्वक निमत्रित कर रही है और वह उसे नत होता हुआ सादर स्वीकार कर रहा है। चारो ओर देखते रहिए और प्राण-पूर्ण पवित्र पवन पान करते जाइए, पर जी नहीं अघाता।"

अब वे एक कन्दरा के पास ले गये—"अहा! इस भूमि को तो देखो। प्रकृति ने मानो इसे सारे ससार से छिपाने के लिए हरियाली में छिपा दिया है। ये निर्झर अपने हिमकणो से यहाँ छिडकाव किया करते हैं और ये पुष्प इसके पद पर फैले हुए हैं। त्रिविध समीर की इस स्थान से इतनी लगन है कि वह इसे छोड कर जाता ही नहीं। इसके बीच में यह कन्दरा

आकर्षण

दयामयी प्रकृति ने थके मांदे संसार के विश्राम के लिए उजाला दूर हटा दिया है और नीरवता फैला दी है।

मैं भी दीपक बढा कर अन्धकार मे विश्राम कर रहा हूँ। यदि कहीं जुगनू भी चमक जाता है तो आँखो में आग सी लग जाती है। अचानक मेरा मन उस धुँधली लौ की ओर जाने को क्यों मचल उठता है जो इस विशाल नदी के उस सुदूर किनारे पर टिमटिमा रही है और जिसकी छाया सुवर्ण-मान-दण्ड का रूप धर के उसकी थाह ले रही है।

मैं अपने साज बाज समेट कर चुपचाप बैठा था। परन्तु यह क्या, इस ललित स्वरावली के संग, जो निस्तब्ध पवन पर हंस-गति से चल रही है, मैं तान क्यों लेना चाहता हूँ? और उससे अपने साज क्यों मिला रहा हूँ?

तुम्हारे दूत की प्रतीक्षा, मैं कितनी देर से कर रहा था। अपना सदेसा भेजने को मेरे हृदय में मरोर उठ रही थी। और, अपने सँदेसे को वह बार बार बना कर बिगाड रहा था। जो भावना उठती थी उससे जी न भरता था। यही होता था कि इससे भी बढा हुआ सँदेसा हो। इसी तर्क-वितर्क-मयी कल्पना के आनन्द में मैं निमग्न हो रहा था।

तुम्हारा दूत आ पहुँचा। पर यह क्या, मैं उसे देखते ही अपनी सारी कल्पना और सब सँदेसा भूल भाल कर यही पूछता हूँ—कहो, प्रियतम ने कुछ कहा है।

आकर्षण

दयामयी प्रकृति ने थके मांदे ससार के विश्राम के लिए उजाला दूर हटा दिया है और नीरवता फैला दी है।

मैं भी दीपक बढा कर अन्धकार में विश्राम कर रहा हूँ। यदि कहीं जुगनू भी चमक जाता है तो आँखो में आग सी लग जाती है। अचानक मेरा मन उस धुँधली लौ की ओर जाने को क्यों मचल उठता है जो इस विशाल नदी के उस सुदूर किनारे पर टिमटिमा रही है और जिसकी छाया सुवर्ण-मान-दण्ड का रूप धर के उसकी थाह ले रही है।

मैं अपने साज बाज समेट कर चुपचाप बैठा था। परन्तु यह क्या, इस ललित स्वरावली के सग, जो नि स्तब्ध पवन पर हस-गति से चल रही है, मैं तान क्यों लेना चाहता हूँ ? और उससे अपने साज क्यों मिला रहा हूँ ?

अशान्ति में शान्ति

कलपती हुई श्यामा भ्रमराली, स्वयवरा कुमारी की भाँति इधर से उधर भटक रही है जिस सुमन-वर की उसे खोज है, मिलता ही नहीं।

समीरण रसिक के सदृश इधर से उधर मारा मारा फिर रहा है। वह एक स्थान पर ठहरता ही नहीं। एक आमोद को हृदय से लगा कर कुछ ही क्षण बाद दूसरे को अपनाता है। किस आमोद को पाकर उसे चिरशान्ति मिलेगी, इसका पता ही नहीं।

पुष्करिणी, प्रमदा की भाँति अपनी तरंगों से, मर्यादा के बाहर जाना चाहती है। वह इस पद्म-वन के मधु से छकी ही नहीं। सरसी हो कर भी वह रस के लिए क्षुब्ध हो रही है।

मचलने वाले बच्चे की तरह कोकिल कूकता है। इससे उसकी हृदय-वेदना कुछ देर को रुक जाती है। पर वह फिर खड़ी होती है और वह फिर हाय हाय कर उठता है।

परन्तु मैं अपनी खिड़की पर बैठा यह सब देख रहा हूँ और मुझे इस अशान्ति में पूर्ण शान्ति मिलती है।

स्वार्थ

पाटल, मैंने तुमको इतने प्रेम से अपनाया। तुम्हें तुम्हारे स्वजनो से विलगा कर छाती से लगा लिया। तुम्हारे काटो की कुछ परवाह न की, क्योंकि तुम्हारी चाह थी।

कहाँ मेरा मन इसी चिन्ता मे चूर रहता था कि तुम्हारी पङ्खुरियाँ दब न जावे। सारे ससार से समस्त चित्तवृत्तियाँ खिच कर एक तुम्हीं में समाधिस्थ होकर रही थीं। कहाँ आज वही, मैं, तुम्हे इस निर्दयता, उदासीनता और घृणा से भूमि पर फेंक रहा हूँ, क्योंकि तुम्हारे रूप, रङ्ग, सुकुमारता और सौरभ सब देखते देखते नष्ट हो गये हैं।

कहाँ तो मैं तुम्हें हृदय का फूल बना कर अभिमानित होता था, कहाँ आज तुम्हें पद-दलित करने में डरता हूँ कि कहीं काँटे न चुभ जायँ।

अरे, यह प्रेम कैसा! यह तो स्वार्थ है। क्या इसी का नाम प्रेम है? हे नाथ, मुझे ऐसा प्रेम नहीं चाहिए। मुझे तो वह प्रेम प्रदान करो जो मुझे भेद-बुद्धि-रहित पागल बना दे।

विदा

मित्रो, जब मैं तुम लोगों से विदा होने लगूँ तब मुझे परम प्रसन्नता से विदा करना। मुझे सच्चे जी से आशीर्वाद देना कि मैं अपनी साधना में सिद्ध होऊँ।

यदि तुम मुझे खुले जी से आज्ञा न दोगे तो मेरे पैर बँधे से पड़ेंगे, मेरा जी तुम में अटका रहेगा और मैं एकचित्त से अपने अभीष्ट में प्रवृत्त न हो सकूँगा। फिर उस की सिद्धि की कौन आशा।

एव, यदि तुम मुझे सच्चे जी से आज्ञा दोगे तो उस के मन प्रभाव से मेरा हृदय और भी दृढ़ हो जायगा और मुझे निस्सन्देह सफलता होगी।

मित्रो, क्या तुम यह नहीं चाहते कि तुम्हारे दीन सखा की लगन पूरी हो जिससे उसे नित्य और निरन्तर तुम्हारी सेवा और सङ्गति का सौभाग्य मिले?

आँसू

मेरे आँसुओ, तुम मेरे हृदय ही में बने रहो, बाहर न निकलो।

बाहर आकर आँखों में बसी उस मञ्जुल मूर्ति को धुँधली न करो। हृदय ही मे रह कर उसे धोया करो।

बाहर आकर ससार की रूखी हँसी का कारण न बनो हृदय ही मे रह कर उसे आर्द्र बनाये रहो।

बाहर आकर सूखी धूल मे मिलने के लिए न गिरो। हृदय ही मे रह कर उन पवित्र स्मृतियो को सींचा करो।

तुम मेरे परमनिधि हो, भावरत्नाकर हो—तुम मेरे हृदय से अलग न हो।

हीरा

हीरे, तेरे हीरक होने का क्या यही फल है कि तू वज्र बने और अपने साथियों से अलग हो। तू अपना वर्ण खोकर निर्वर्ण हो जाय और जैसी छाया पड़े वैसे ही रङ्ग का दीख पड़े।

तू काटा छांटा जाय और उस धनवान् के पाले पड़े जो तेरे समान रिक्त है।

नहीं, तू कोयला ही बना रह और दूसरों के लिए जल कर उन्हें ऊष्मा और प्रकाश प्रदान कर।

वन पाटल

हे प्रकृति के पुत्र, प्रिय होने के कारण उसने तुझे अपने क्रीडा-कानन में स्थान दिया है।

कृत्रिमता में तू नहीं फूलता।

तत्त्व तेरी सेवा में नियुक्त हुए हैं,—विशाल आकाश तुझ पर छाता लगाता है और उन्मुक्त पवन तुझे प्राण प्रदान करता है। सूर्य्य का कर्तव्य तुझे ऊष्मा एवं वर्ण देना है और सजल जलद नम्र होकर तुझे रस अर्पित करता है। धरणी—पर्वत की कठोर-हृदया धरणी—तक को तुझे अपने हृदय में स्थान देना पड़ता है।

शिशिर में तुझे शीत से बचाने के लिए तुषार तेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग को सुदृढ बना देता है, जिससे तू वसन्त आते ही लह-लहा उठता है।

मधु-मक्षिकाएं अपना मधुर गान सुनाती हुई तुझे अपने, मधु बहाने वाले होठों से प्रेमपूर्वक बार बार चूमा करती हैं।

न तुझ में आंखों को दुखाने वाला चटकीला वर्ण है न मस्तक को पीडित करने वाली उग्र गन्ध।

हे स्वभाव के सन्तान, न तुझ में सुमन का सहज सौन्दर्य्य ढकने वाला पर्दा—पँखड़ियों का पटल-समूह—ही है।

अभ्यर्थ आवेदन

अकिञ्चन किसान, तू समझता है कि अपने क्षेत्रपति से तू ने जो आवेदन किया है उस पर उसने ध्यान भी न दिया होगा। सारी रात तू ने करवटें बदल बदल कर काटी है और वेदना के मारे तू छटपटा रहा है। ऐसे महान के मन मे ऐसी छोटी बात स्थान भी नहीं पा सकती, यही चिन्ता तुझे मारे डालती है।

परन्तु कदाचित् तुझे यह ज्ञात नहीं कि वह ऐसी ही ऐसी अनेक लघु याचनाओं के बोझ से गुरु बना है। तेरे जैसे कितने ही उससे, निवेदन करते रहते हैं और वह सब की सुनता है एव उन सब पर उचित विचार करना उसी का सामर्थ्य है।

बिना उसकी दशा देखे ही कोई बात निश्चित न करले।

तनिक आंखें खोल कर देख तो। पानी के भार से नत मेघ की नाई वह सदैव अपनी प्रजा को आच्छादित रखता है और जहाँ जितने की आवश्यकता होती है वहाँ उतनी बूँदो के रूप मे वह उच्च आकाश से भूपतित होता है।

क्या यही तेरा सौभाग्य नहीं कि तेरे आवेदन पर वह विचार करता है और तेरे लिए अपने उच्च आसन से नीचे उतर आता है।

तू इसका गर्व कर।

मृग-मरीचिका

अरे, तू धैर्य क्यों नहीं धरता, चिन्तित होने की क्या बात है ?

जिस तृष्णा के कारण तू भटकता फिरता है वह यद्यपि बुझी नहीं है परन्तु उसके लिए भटकने में तुझे क्या सुख नहीं मिलता ?

जिस समय परेरू अपने अधजले तरुकोटरों में प्रचण्ड पिपासा को किसी प्रकार दबा कर पुट-पाक की तरह पक से रहे हैं, उस समय भी तू जीवन के लिए इतनी दौड़ धूप कर रहा है, क्या यह थोड़ा है ?

जो तुझे इस मरुभूमि में लाया है, जिसने तेरे मृगनयनो के तारे मे अपनी विमल ज्योति से समा कर तुझे यह मरीचिका दिखाई है, इस मरीचिका का कारण भी जिस का प्रकाश ही है, वही तेरी दारुण तृषा बुझा कर तुझे पार लगावेगा।

पूर्ण-चन्द्र

हे अमृत बरसाने वाले पूर्ण चन्द्र, हे ससार को शीतल करने वाले पूर्ण चन्द्र, हे कृष्ण-आकाश को उज्ज्वल करने वाले पूर्ण चन्द्र, हे रत्नाकर को आनन्दोन्मत्त करने वाले पूर्ण चन्द्र, हे दिन भर के व्यथित कमलो को विश्राम देने वाले पूर्ण चन्द्र, हे धरणी के कुमुद नेत्रों से देखे जाने वाले पूर्ण चन्द्र, हे उपल को द्रवित करने वाले पूर्ण चन्द्र, हे मल्लिका को हँसाने वाले पूर्ण चन्द्र, हे नलिनी से मकरन्दार्घ्य पानेवाले पूर्ण चन्द्र, हे प्राची के शिरोरत्न पूर्ण चन्द्र, हे पृथ्वी को अपने करो से लपटाने वाले पूर्ण चन्द्र, हे चन्द्रिका का वितान तानने वाले पूर्ण चन्द्र, हे श्यामघन-पटल में सुनहली किनार लगाने वाले पूर्ण चन्द्र, हे अङ्गार चुगने पर भी चकोर को जीवित रखने वाले पूर्ण चन्द्र, तुम अमृत-वर्षा से मेरे मानस को भर दो और अपनी छाया द्वारा निरन्तर उसमे खेला करो। मैं केवल यही चाहता हूँ।

तुम्हारे लिए

ग्राम के लोगों को बहुतेरी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती और वे माँगने मेरे पास आते। मैं द्वार बन्द करके बैठा रहता और वे खटखटा कर लौट जाते। दूसरे दिन, मार्ग में, यदि वे उलहना देते तो मैं कह देता कि "मैं ने तो समझा था कि पवन होगा।"

यदि कभी भूल से कपाट खुले भी रह जावे तो उनके पैरो की चाँप सुनते ही मैं व्याज-निद्रित हो जाता। या दिया बुझा देता। जब वे इसकी शिकायत करते तो कह देता कि—"दिन भर का हारा थका रहता हूँ, पड़ते ही सो जाता हूँ।" किंवा "चिन्तावश दीपक बालने की सुध ही न रही।"

अगर कोई और भी पक्का हुआ तो वह, जब, जहाँ सामना होता, अपेक्षित वस्तु माँगता। पर मैं गिड़गिड़ा कर कह देता—"वह मेरे पास नहीं, घर देख लो। हाय! तुम्हारी सेवा करने से वञ्चित रहने का मुझे दुख है।"

इस प्रकार ससार पर मैं ने अपनी कपट-वृत्ति का चय और व्यय करके अपने निष्कपट-भाव एव सर्वस्व का रक्षण तथा पोषण किया है। जिससे आज मैं तुम्हारे सामने अपना, सुरक्षित, शुद्ध हृदय से सञ्चित और परिवर्द्धित सर्वस्व लेकर उपस्थित हुआ हूँ।

चिर समाधि

जिन आँखों ने बहुत कुछ देखा है उन पर तुमने परदा डाल दिया है। जो दृश्य उनमें बसे हैं वे निकल न जायँ, इस लिए उन्हें तुमने बन्द कर दिया है।

मेरे सम्पुटित हृत्कमल को तुमने प्रस्फुटित कर दिया है, और जो भ्रमर उसमें बँध कर गुनगुनाया करते थे वे उड़ गये हैं।

मेरे हाथ में जो दीप था उसे समीर बुझा चुका है अब मैंने उसे अलग रख दिया है।

मेरी आँखें बन्द हैं, हृदय खुला हुआ, हलका और नीरव है, तथा दोनों हाथ खाली हैं।

अब तो मैं उन्हीं दृश्यों के देखने में निमग्न हूँ।

मृत्यु

मृत्यु ! तुझसे बढ कर ससार मे मेरा और कौन है, तू मुझे अनन्त जीवन प्रदान करेगी।

जब सारा ससार मुझे छोड देता है तब तू मुझे अपनाती है, और मुझे जर्जरित पिञ्जर से छुडा कर नये नये दृश्य दिखाती है।

आधि व्याधि की असीम यातना से छुडाने के लिए तू ममता के मारे चिरशान्ति का विशाल वितान तानती है।

जब जब तू मेरे पास आई है तब तब मैं ललक कर तुझसे मिला हूँ। और अपने प्रेम की पूरी परीक्षा दे चुका हूँ। तूने उसमे मुझे पक्का पाया है और फल में क्या इस बार तू सदैव के लिए मुझे बन्धन-विमुक्त न कर देगी ?

उद्धार

दु:ख से उद्विग्न होकर मैंने निश्चय किया कि ऐसे जीवन से मरण भला।

पावस मे नदी बढ कर असीम हो रही थी। महानद भी उसकी प्रतिस्पर्धा न कर सकता था। उसके प्रबल वेग और तुमुल तरङ्गों का क्या कहना। मैंने अपनी नाव खोली और सोचा कि आज जल-समाधि लगेगी।

नाव पलक मारते धारा मे पहुँची और वहाँ भँवर मे चक्कर खाने लगी। लहरो के थपेडो ने उसका पेंदा तोड दिया और शीघ्रता से उसमे पानी भरने लगा। अब मैं अधीर हो उठा। पानी में दम घुट कर प्राण निकलने की कल्पना को भी न सह सका।

आज मुझे जीवन का मोल ज्ञात हुआ। उसमे दु:ख कहाँ? दु:ख तो जीवन के अभाव मे, अकर्मण्यता में है।

मैं कर्म्मो मे भागता था अत: इतना दु:खित था। वाध्य होकर, किसी प्रकार शरीर-यात्रा करनी पडती थी, इससे तादृश दुःख नहीं जान पडता था, जितना आज उस यात्रा से विरत होने के प्रस्ताव मात्र से हुआ।

मैंने हृदय से चिल्ला कर तुमसे कर्म्म करने का प्रण किया।

जो सब शक्ति मुझमें न जाने कहाँ छिपी हुई थी, आज प्रकट हुई। और, मैं नाव को ले कर किनारे की ओर लेही तो

आधाराधेय

हम कितनी ही वस्तुओं को शब्द द्वारा सोचते हैं और कितनी ही ऐसी हैं जिन्हें हम कल्पना-चित्रों द्वारा ही देख सकते हैं। परन्तु और भी कितनी ही ऐसी भावनाएँ हैं, जहां शब्द या दृष्टि की गति नहीं है परन्तु नीरवता और अदर्शन सदैव उन वृत्तियों में विहरते रहते हैं और हमें वे तभी ज्ञात होती हैं जब उनकी आवश्यकता पड़ती है।

विद्युद्रश्मि सदैव जलधर के साथ ही रहती है, पर उसे उस का ज्ञान नहीं रहता। सयोग से वह प्रकट हो जाती है।

यदि तुम न होते तो मेरा अगाध प्रेम कैसे प्रकट होता। क्या वह म्लान कलिका के सौरभ की भांति मेरे ही सग नष्ट न हो जाता ?

समुद्र-तट

समुद्र-तट पर बैठ कर मैंने क्या देखा ?

मेरे सब साथी डोंगियों पर बैठ कर मोती निकालने चले गये थे, पर मैं आलस्य और कायरता से समुद्र-तट पर ही रह गया था।

एक तो मैंने यह देखा कि सागर प्रतिक्षण सौवर्ण-सैकत-वेला को अपनी तरङ्गों से सींचा करता है तो भी उसकी पिपासा नहीं बुझती। दूसरे मैंने यह भी देखा कि वह रत्नों के गजरे के समान, इन्द्रधनुष के वर्णों से रञ्जित, फेन-माला उसे पहनाया ही करता है, किन्तु देखते देखते वह रुचिर माला अपना विचित्र वर्ण खो देती है और टूट फूट कर उसी बालू में बिला जाती है।

चित्र-विचित्र सहस्रों शुक्ति-शङ्खों को वह तट पर छितरा देता है और कुछ ही क्षणों बाद उन्हें फिर बटोर ले जाता है।

परन्तु सब से बढ़ कर मैंने यह देखा कि मैं क्रीडावश सागर को कभी कभी अपने हाथों से लहरा देता और यह समझता कि वे लीला-लहरियाँ उसकी लोल कल्लोल-मालाओं में उसी क्षण लीन हो जायँगी किन्तु देखता कि उनका आन्दोलन क्रमशः मन्द होता हुआ भी ठेठ दूसरे तीर पर जाकर ही शान्त होता।

आधाराधेय

हम कितनी ही वस्तुओं को शब्द द्वारा सोचते हैं और कितनी ही ऐसी हैं जिन्हें हम कल्पना-चित्रों द्वारा ही देख सकते हैं। परन्तु और भी कितनी ही ऐसी भावनाएँ हैं, जहाँ शब्द या दृष्टि की गति नहीं है परन्तु नीरवता और अदर्शन सदैव उन वृत्तियों में विहरते रहते हैं और हमें वे तभी ज्ञात होती हैं जब उनकी आवश्यकता पड़ती है।

विद्युदग्नि सदैव जलधर के साथ ही रहती है, पर उसे उस का ज्ञान नहीं रहता। सयोग से वह प्रकट हो जाती है।

यदि तुम न होते तो मेरा अगाध प्रेम कैसे प्रकट होता। क्या वह म्लान कलिका के सौरभ की भाँति मेरे ही सग नष्ट न हो जाता ?

क्रीडास्थल

जानते हो, नींद के खेलने का स्थान कहाँ है ? बच्चों की उन खिलवाडी आँखो में जो समदर्शी हैं और जिन मे अलौकिक प्रेम भरा है। जो समग्र विश्व को स्वर्गीय दृष्टि से देखती हैं और जिन से आनन्दमय मुसकराहट की किरणें सदा फुरा करती हैं।

जानते हो, पवन ने अपने खेलने के लिए कौन स्थान चुना है ? उन उपवनो में जहाँ उसके पहुँचते ही हर एक कली खिल उठे और उसे अपने आमोद से भर दे। जहाँ वह मधुपान से झूमता हुआ और लताओं के अटपटे जालों में अटकता हुआ एव उनसे पुष्पाञ्जलियाँ पाता हुआ चल सके। जहाँ भ्रमरावली उस के आगमन से चञ्चल होकर उस का गुण गान करने लगे और जहाँ कमलरजोरञ्जित सरोवर के कण उड उड कर उसे शीतल एव अनुरक्त करे।

जानते हो, चन्द्र ने अपने खेलने का कौन स्थान बनाया है ? उस निखरे नीलाकाश में जिस में से उसका सौन्दर्य्य फटा पडता है। जहाँ वह जगमगाती तारकाओं की प्रभा मन्द करता है। जहाँ तक पहुँचने का उद्योग चकोर वारवार करता है पर न पहुँच कर आशा के सुख से जीवन धारण किये रहता है। और जहाँ से वह ससार मात्र पर अमृत बरसाता है।

नदियो ने अपने खेलने का स्थान अपने जन्मदाता पहाडो की गोद में रक्खा है। जहाँ वे एक चट्टान से कूद कर दूसरी पर जाती हैं। जहाँ वे ढोकों के सग खेल कूद मचाती हैं और छींटे

उडाती हैं तथा प्रसन्न हो कर फेन-हास्य हँसती हैं। जहाँ वे अपनी ओर झुकी लतालियो का हाथ पकड कर उन्हें अपने सग ले दौडना चाहती हैं। जहाँ उनके वाल-सघाती क्षुप उन्हें अपनी अङ्कुराङ्गुलियो से गुदगुदाते हैं और वे तनिक सा उचक कर तथा वङ्क हो कर बढ जाती हैं। जहाँ वे लडकपन के भोले भाले मन-माने गीत गाती हैं और उनके पिता उनके प्रेम से उन्हें दुहराते हैं। और जहाँ वे पूरी उँचाई से वेग के साथ कूद कर गर्तों में आती हैं और आप ही अपना दर्पण बनती हैं।

और जानते हो, मेरे मानस ने अपने खेलने का स्थान कहाँ रक्खा है? जिनका विलास-स्थान भी मानस ही है उन चरण-कमलों मे। जिन्हें मेरा मानस सदैव अपनी तरङ्गो से चूमा करे। जिनके मधुर मधुपान से यह छका रहे। जिन के पराग से यह पङ्किल बने और जिनकी रतनारी छाया से यह रत्नाकर की छवि को मन्द करे।